Chapter 3

अध्याय : ३

"हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में
मनावैज्ञानिक क्षणों का निरूपण ।"

३:००:० प्रास्ताविक :

"मनोवैज्ञानिक क्षण" अंग्रेजी के 'Psychological moments' का हिन्दीकरण है । पूर्ववर्ती पृष्ठों में निरूपित किया गया है कि सामान्यतया मानवजीवन की गति दो रूपों में परिलक्षित होती है 'man in action' (बाह्य कार्य-कलापों में व्यस्त मनुष्य) और 'man in contemplation' (विचारशील या चिंतनशील मनुष्य) । मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का सम्बन्ध अधिकांशतः मानवजीवन की उस दूसरी गति से है । अर्थात् यहाँ बाह्य कार्यकलापों को उतना महत्व न देते हुए, सोच विचार और चिंतन को अधिक महत्व दिया जाता है । दूसरे उपन्यासों में व्यक्ति के कार्य कलापों को निरूपित किया जाता है, मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में कोई व्यक्ति उन कार्यों को क्यों करता है, उसे विश्लेषित किया जाता है । दूसरे शब्दों में कहें तो उपन्यास के अन्य

रूपबंधोंमें जहाँ कार्य केन्द्रस्थ होता है, वहाँ मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में कारण को केन्द्रस्थ किया जाता है । फलत: मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में लेखक का प्रयास मनोवैज्ञानिक क्षणों के निरूपण की ओर अधिक रहता है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने गोस्वामी तुलसीदास के काव्य पर विचार करते हुए गोस्वामीजी में मार्मिक स्थलोंकी जो पहचान है उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है । उनका अभिप्राय है कि प्रबन्ध काव्य के आलेखन में वही कवि सफल होता है जिसे मार्मिक स्थलों की पहचान होती है । ठीक उसी प्रकार मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के लेखन में वही कथाकार सफल होता है, जिसे मनोवैज्ञानिक क्षणों की समझ और परख होती है । प्रस्तुत अध्याय में हमारा यह उपक्रम रहेगा कि हिन्दी के कतिपय मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक क्षणों का अनुसंधान किया जाए । मनोवैज्ञानिक क्षणों के अंतर्गत क्षण के विस्तार (extention of moment) तथा चिंतन-मनन के क्षणों को भी लिया जा सकता है ।

३:०१:००

हिन्दी में मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का सूत्रपात जैनेन्द्रजी ने किया। जैनेन्द्रजी का 'त्यागपत्र' उपन्यास चिंतन के क्षणों से भरा पड़ा है । उपन्यास की स्थूल कथा बहुत क्षीण है । समूचा उपन्यास प्रमोद की चिंतनशीलता को ही सामने लाता है । प्रमोद अपनी बुआ मृणाल को बहुत चाहता है । मृणाल भी अपने मन की बातें प्रमोद के आगे प्रकट करती है, फिर भले ही प्रमोद उनको समझता भी न हो । प्रमोद को अपने घर के वातावरण से इतना तो ज्ञात हो गया था कि मृणाल बुआ की शादी उनकी इच्छा के विपरीत उसके माता-पिता जबरदस्ती कर रहे थे । साधारणतया छोटे बच्चे अपने मौसा या फूफा को चाहते हैं । परन्तु यहाँ प्रमोद के मन में अपने फूफा के प्रति वितृष्णा का भाव हे, क्योंकि उसे मालूम है कि यह शादी बुआ की मरजी से

नहीं हुई है । फूफा उम्र में भी बड़े हैं । बुआ और फूफा में कोई मेल नहीं है। दूसरे प्रमोद का शिशुमन शायद यह भी गवारा नहीं कर सकता कि यह अपरिचित आदमी, जो उसका फूफा बनता है, उसे अपनी बुआ से अलग कर देगा । अत: मनोवैज्ञानिक दृष्टया प्रमोद अपने फूफा को विरोधी या प्रतिस्पर्धी की दृष्टि से देखता है । अत: जब फूफा उसे कुछ पूछते हैं तो प्रमोद जान-बूझकर उनके प्रश्नों के गलत जवाब देता है । प्रमोद और फूफा के बीच यह जो संवाद होता है, मनोवैज्ञानिक क्षण की दृष्टि से, वह बहुत महत्वपूर्ण है । यथा -

''कहिए जनाब, आपका इश्मशरीफ

ओह याद आया प्रमोद ।

किस दर्जे में पढ़ते हैं ?''

''इस छ: माही इम्तहान में फेल हो गया हूँ ।''

''फैल हो गये हो । यह खबर तो बुरी है । किस जमात में?''

''घबराओ नहीं, किस जमात में पढ़ते हो ?''

''मैं फेल होने से नहीं डरता ।''

''उन्होंने बड़े प्रेम से कहा - फैल होने से डरना चाहिए भाई । जो मन लगाकर शुरू में पढ़ते हैं , वे ही आगे जाकर जिन्दगी में कुछ करते हैं । समझे ? अच्छा यहाँ आओ । आओ, हमारे पास आओ ।''

''दर्जा सात में पढ़ते हो या आठ में ?''

''आठ में ।''

''देखो क्लास में फे ल नहीं होना चाहिए । अच्छा बतलाओ, इकन्नी लोगे या दुअन्नी ?''

''कहकर अपनी जेब में हाथ डाला ।

''जल्दी बतलाओ, नहीं तो दोनों का माल उड जाएगा और फिर ताकते रह जाओगे ।''

''आपको चाहिए तो दुअन्नी मैं आपको दे सकता हूँ ।''

''मैं आठवे दर्जे में पढ़ता हूँ और इस इम्तहान में अव्वल आया हूँ ।''[१]

इसी उपन्यास में ऐसे अनेक स्थल मिलते है जहाँ लेखक का गूढ़ चिंतन उपलब्ध होता है । कुछ उदाहरण दृष्टव्य है :-

(i) अज्ञात रहकर सच्चा बनूं, झूठा बनकर नामवर होने में क्या धरा है ? ओह, वैसी नामवरी निष्फल है, व्यर्थ है, निरी रेत है । आत्मा को खोकर साम्राज्य पाया तो क्या पाया ?[२]

(ii) पूछता हूँ, मानव के जीवन की गति क्या अंधी है ? वह अप्रतिरोध्य है पर अंधी है यह तो मैं नहीं मानूंगा । मानव चलता जाता है और बूंद-बूंद दर्द इकट्ठा होकर उसके भीतर भरता जाता है । वही सार है। वही जमा हुआ दर्द मानव की मानस-मणि है, उसके प्रकाश में मानव का गतिपथ उज्जवल होगा । नहीं तो चारों ओर गहन वन है । किसी ओर मार्ग सूझता नहीं है और न मानव क्षुधा-तृषा, राग-द्वेष, मान-मोह में भटकता फिरता है । यहाँ जाता है, वहाँ जाता है, पर असल में वह कहीं भी नहीं जाता । एक ही जगह पर अपने ही जुए में बंधा कोल्हू के बैल की तरह चक्कर मारता रहता है ।[३]

(iii) जो समाज में हैं, समाज की प्रतिष्ठा कायम रखने का जिम्मा भी उन पर है । उनका कर्तव्य है कि जो उसके उच्छिष्ट है, या उच्छिष्ट बनना

पसंद करते हैं उन्हीं को जीवन के साथ नये प्रयोग करने की छूट हो सकती है । प्रमोद, यह बात तो ठीक है कि सत्य को सदा नये प्रयोगों की अपेक्षा है, लेकिन उन प्रयोगों में उन्हीं को पड़ना और डालना चाहिए जिनकी जान की अधिक समाज-दर नहीं रह गई है ।[४]

इस प्रकार की अनेकानेक चिंतन कणिकाएँ प्रस्तुत अध्याय में मिलती हैं । यहाँ उदाहरण के लिए केवल तीन चिंतन कणिकाओं को प्रस्तुत किया गया है । प्रथम में उपन्यास का नायक प्रमोद अपने अंतर्द्वन्द्व को प्रकट करता है । इसके भीतर जो 'इद' और 'इगो' की लड़ाई चल रही है उसे व्यंजित किया गया है । दूसरी चिंतन कणिका में मानव जीवन की फिलोसोफी को अभिव्यक्त करते हुए उसमें दर्द या पीड़ा का कितना महत्व है उसे द्योतित किया गया है । बूंद-बूंद दर्द एकत्रित होकर मानस-मणि का निर्माण करता है । उसके प्रकाश में ही मानवता का पथ उज्जवल होता है । उसमें यह भी ज्ञापित किया गया है कि मानव जीवनभर कोल्हू के बैल की तरह अपने रागद्वेष और मान-मोह के चक्करों में भटकता रहता है । इसके गहन वन में खो जाता है । तीसरे उदाहरण में सूक्ष्म व्यंग्य छिपा हुआ है । मृणाल के द्वारा यहाँ लेखक यह कहलवाते हैं कि समाज और सामाजिक प्रतिष्ठा से डरनेवाले लोग जीवन में कभी भी नये प्रयोग नहीं कर सकते और सत्य को हमेशा नये प्रयोगों की अपेक्षा रहती है । अत: मानवता को नये प्रयोग और सत्य वे ही दे सकते हैं जिसको समाज के लोग तुच्छ या उच्छिष्ट समझते हैं । तथाकथित सामाजिक लोग ऐसे लोगों को पागल ही कह सकते हैं ।

३:०२:००

मनोवैज्ञानिक क्षणों की दृष्टि से जैनेन्द्र का 'सुनीता' उपन्यास भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है । प्रस्तुत उपन्यास में सुनीता श्रीकान्त की पत्नी है ।

श्रीकान्त का कॉलेज के दिनों का एक अभिन्न मित्र है - हरिप्रसन्न । हरिप्रसन्न का व्यक्तित्व बड़ा रहस्यमय है । वह एक क्रान्तिकारी दल का सदस्य है । अच्छा चित्रकार है । घर गृहस्थी का कोई लंद-फंद नहीं बसाना चाहता । श्रीकान्त चाहता है कि वह घर गृहस्थी बसाने की सोचे । नारी के प्रति उसके मन में कोई आकर्षण जगे । अत: वह चाहता है कि सुनीता हरिप्रसन्न को अधिक से अधिक समय दे, उसका हर तरह से ध्यान रखें, उसको प्यार दें और उसमें कोमल भावनाओं को जागृत करें । श्रीकान्त सुनीता को हरिप्रसन्न के साथ छोड़कर जान-बूझकर कुछ दिनों के लिए कहीं जाना चाहता है । उस क्षण का बड़ा ही मनोवैज्ञानिक निरूपण लेखक ने किया है । यथा -

''तुम क्यों जाते हो ? मत जाओ, जाओ तो मेरे भीतर विश्वास भर जाओ ।''

''श्रीकान्त : सुनीता ! सुनीता ! क्या है ?''

स्वामी के वक्ष से लगकर सुनीता ने कहा - ''कुछ नहीं, मेरे प्रिय । राहु आया है, सो दूर हो गया, श्रद्धा की पूर्णिमा तो प्रकाशित ही रहेगी । श्रद्धा मेरी डँसी न जाएगी । मेरे प्रिय! मुझे प्रेम करना न छोड़ो, मुझे बेसुध रहने दो । सुध पाकर मैं फि र क्या करूँगी ? मेरा तो सब आधार लूट जाएगा । मुझे खोया रहने दो ।''

श्रीकान्त ने सुनीता की पीठ धीरे-धीरे थपकते हुए कहा - ''मेरी सुनीता, मेरी रानी, मैं तो तुम्हारा हूँ ।''

सुनीता स्वामी से बिल्कुल अलग हो गई, पूछा, ''तुम मेरे हो ? मेरे ही हो ? तो मुझे कहो कि तुम मेरे हो ?''

श्रीकान्त - ''सुनीता ।''

सुनीता - ''कहो मैं तुम्हारी हूँ। कहो, मैं तुम्हारी हूँ।''

सुनीता - ''कहो कहो।''

श्रीकान्त - ''मैं तुम्हारा हूँ, सुनीता।''

सुनीता - ''और मैं तुम्हारी हूँ कहो''।

श्रीकान्त - ''और तुम मेरी हो''।

सुनीता ने मानो भर पाया जो भीतर दुर्लक्ष्यरिक्त-सा हुआ था, वह इस पूर में पूर गया। अब क्या हो ? अब एक दूसरे के समक्ष परस्पर पृथक उपस्थिति मानों उन्हें असह्य ही होती जाने लगी या तो वे दोनों गाढ़ आलिंगन में बंधकर परस्पर पार्थक्य को ही मिटा डालें या फिर परस्पर के समक्ष से इसी समय लुप्त हो जाएँ, दूर हो जाएँ, ऐसे समय दूरी ही निकटता को सत्य बनाती है।

सुनिता ने कहा - अगर कल नहीं, तो अवश्य परसों।

यह समूचा प्रसंग सुनीता के लिए बड़ा ही द्वन्द्वात्मक है। एक तरफ श्रीकान्त का व्यवहार बहुत ही शालीन और शीत है। हरिप्रसन्न का रहस्यमय व्यक्तित्व सुनीता के अंतर्मन को कहीं-न-कहीं आकर्षित करता है। दूसरी तरफ उसके मन में नारीत्व को लेकर स्त्री के शील और व्यवहार के लिए स्थापित मान्यताएँ जग रही हैं और ऐसी स्थिति में श्रीकान्त सुनीता को अकेले छोड़ कर जाने की बात करता है। अत: यह क्षण सुनीता के जीवन में एक नाजुक क्षण के बराबर है।

३:०३:००

जैनेन्द्रकुमार का 'अनाम स्वामी' उपन्यास 'त्यागपत्र' का उत्तरार्द्ध है। परन्तु 'त्यागपत्र' के बहुत बाद यानि सन् १९४२ में उन्होंने 'अनाम स्वामी'

उपन्यास का प्रारम्भ किया था । त्यागपत्र देने के अनन्तर विरक्त बने जज महोदय को इस उपन्यास में लेखक ने किसी प्रयोजन से प्रस्तुत किया है । बारह परिच्छेदों के बाद वह अपूर्ण रहा जिसे १९७४ में पूरा किया गया । प्रारम्भ में बारह परिच्छेदों में जैनेन्द्र का चिन्तन-मनन दृष्टिगत होता है । उसमें कथा का अंश बहुत कम है, अन्तर्मन की उधेड़बुन ज्यादा है । चिन्तन-मनन के क्षणों को भी मनोवैज्ञानिक क्षणों के अंतर्गत ही अंतर्भुक्त किया गया है। प्रस्तुत उपन्यास में जैनेन्द्र का यह चिंतन 'अनाम स्वामी' के माध्यम से हुआ है । जज महोदय अनाम स्वामी के प्रति श्रद्धा रखते हैं । उनकी बहुत-सी बातों से असहमत होते हुए भी अनाम स्वामी को वे अपना श्रद्धेय समझते हैं और यदा-कदा उनके आश्रम की मुलाकात लेते हैं । प्रस्तुत उपन्यास का पूर्वार्द्ध तो चिंतन-मनन से भरा पड़ा है । यहाँ उदाहरण के रूप में उसका एक अंश प्रस्तुत है । इसमें अनाम-स्वामी जज महोदय को अपनी बात बता रहे हैं । यथा -

शायद तुम मुझे सुनाओगे कि अप्रेम और रोष का दमन का परिणाम है - कि संसारी में दमन कम है इससे वह सहानुभूति-परायण भी है कि तपस्वी अपने तप से सहानुभूति जला देने के कारण सूखे दावानल के मानिन्द हो रहेगा । स्नेह हो तो जलकर स्निग्ध प्रकाश भी दे, वह न होने से सिर्फ ताप उससे मिलेगा । मैं तुम्हारी बात को काटता नहीं हूँ, केवल दमन हितकारी नहीं । पर आत्मदर्शन के लिए ऐन्द्रियिक संयम होगा । वह दमन नहीं, या कहो दमन वह उर्वस्व है । उससे परिणाम में बंधन या प्रतिक्रिया शेष नहीं बचती आग्रह और नकार-रूप इन्द्रिय दमन कटु फ ल लाता है । तभी मैंने अनेक आश्रमवासियों को विवाह की सलाह और सुविधा दी । खुद मैंने उनका विवाह करा दिया । धर्म एक है, पर सेवन की मात्रा और विधि एक नहीं होती । धर्म वही कि जिसको कहो ब्रह्मचर्य उसी को कहा अहिंसा। उसी

को कह दो सत्यशोध । उसको चाहे जिस भाषा में कहो . . . सृष्टि भोग से चलती दिखे, समष्टि यज्ञ से चलती है.। ब्रह्मचर्य उसी का नाम है। विवाह से एक दूसरे का बनता है, यानि विवाह दो को एक बनाता है । एक अकेला अपना ही है, इससे बेशक विवाहित स्थिति उत्तमेतर है । अहमग्रस्त के लिए विवाह धर्म है । विवाह से परिवार बनता है, यानि उससे एक के मेरेपन का विस्तार बढ़ता है । पर परिवार पर मेरे-तेरे की सीमाएँ हैं । मेरे-तेरे से जिसे छूटना है, जिसे सब का हो जाना है और किसी के लिए भी पराया नहीं बचना है, वह भी क्या विवाह करे ? ऐसे तो मेरे-तेरे का चक्र कसेगा ही। एक का बनकर कोई सबका कैसे हो सकेगा ? निर्णयपूर्वक एक में भोगबद्ध होने से फिर जगत के प्रति हित-सेवा का मानस बनता नहीं । इससे चाहे मुझे कितना भी कहो कि मैथुन शरीरधर्म है, पर मैं कहूँगा कि आत्मा की अखण्डता प्राप्त करने के लिए आत्म-धर्म तो ब्रह्मचर्य ही है । मैथुन प्राणि की प्रकृति है, पर ब्रह्मचर्य मनुष्य की विशेषता है । मनुष्य मात्र प्राणी नहीं है, विशिष्ट प्राणी है । अपने ही प्राणों पर उसे अंकुश भी प्राप्त है । उसे कहते हैं विवेक । उस कारण प्राणी में जो पाया जाता है, वह सब कुछ मनुष्य के लिए भी समर्पित नहीं ठहर जाता । पुरुषार्थ पुरुष का लक्षण है । बेशक पुरुषार्थ से हीन पुरुष पशु से भिन्न नहीं है और परम पुरुषार्थ है मोक्ष। ब्रह्मचर्य बिना मोक्ष असिद्ध है । पुरुषार्थ की मन्दता में ही भोग असम्भव है। सतत पुरुषार्थ ब्रह्मचर्य का दूसरा नाम है । इस तरह भोग का योग में विसर्जन यों ही नहीं, मुक्ति की प्राप्ति के निमित्त से धर्म है ।[५]

यहाँ पर अनाम स्वामी महात्मा गांधी की प्रति छवि ही है और उनके विचारों से भी महात्मा गांधी के विचारों का प्रतिबिम्ब मिलता है । यहाँ पर लेखक ने अनाम स्वामी के द्वारा इन्द्रीयनिग्रह, ब्रह्मचर्य जैसे विषयों की चर्चा की है । सृष्टि भोग से चलती है किन्तु समष्टि यज्ञ से चलती है । अत:

इन्द्रीयनिग्रह और विवाह दोनों की आवश्यकता है। अहंग्रस्त के लिए विवाह धर्म बन जाता है। परन्तु जो मेरे-तेरे की भावना से छूटना चाहता है उसके लिए तो इन्द्रीयनिग्रह आवश्यक है। मैथुन प्राणी की प्रकृति है, पर ब्रह्मचर्य मनुष्य की विशेषता है और मनुष्य प्राणी मात्र नहीं है, वह एक विशिष्ट प्राणी है। अत: प्राणी धर्म को मनुष्य के लिए उचित नहीं बताया जा सकता। यहाँ पर ब्रह्मचर्य की एक नवीन ही व्याख्या लेखक ने प्रस्तुत की है। सतत पुरुषार्थ ही ब्रह्मचर्य का दूसरा नाम है। अत: मैथुन धर्म को समष्टि कल्याण के कार्यों में लगा देना ही ब्रह्मचर्य है। इस प्रकार भोग को योग में नियोजित कर देना है। यह शरीर धर्म का उदात्तीकरण है। इसमें विवेक-सम्पन्न विशिष्ट मनुष्य के धर्म को लेखक ने अनाम स्वामी के विचारों के द्वारा अभिव्यक्त किया है। यह तो केवल एक परिच्छेद है। उपन्यास के पूर्वार्द्ध में ऐसे अनेक परिच्छेद उपलब्ध होते हैं जिनमें लेखक ने चिंतन के क्षणों को उकेरा है।

३:०४:००

'परख' जैनेन्द्रकुमार का प्रथम उपन्यास है। मनोवैज्ञानिक उपन्यास का सूत्रपात भी यहाँ से माना जाना चाहिए। प्रस्तुत उपन्यास के द्वारा जैनेन्द्रजी ने न केवल उपन्यास को एक नया मोड़ दिया, बल्कि उपन्यास विषयक विभावना या सोच को भी एक नयी दिशा दी। जैनेन्द्र पूर्व उपन्यास विषयक चिंतन यह कहता है कि उपन्यासों में सर्वाधिक महत्व यथार्थ का है। यहाँ तक कि आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीजी ने भी कह दिया था कि उपन्यास में दुनिया जैसी होती है वैसे ही चित्रित की जाती है। परन्तु प्रस्तुत उपन्यास की भूमिका में जैनेन्द्रजी ने सन् १९२९ में कहा था - उपन्यास में जैसी दुनिया है वैसे ही चित्रित नहीं होती। दुनिया का कुछ उठा हुआ अनन्त, कल्पित रूप

चित्रित किया जाता है । वह उपन्यास किसी काम का नहीं, जो इतिहास की तरह घटनाओं का बखान कर जाता है । . . . उपन्यास का काम है, कुछ आगे की, भविष्य की संभावनाओं की जरा झांकी दिखाना ओर जो कुछ अब है, उसकी तह हमारे सामने खोल देना । उपन्यास एक नये, अजीब ही ढंग से रंगे हुए उपादेय जीवन का चित्र हमारे सामने रखता है । . . . उपन्यास इस तरह सत्य में स्वप्न का पुट देकर, वास्तव में कल्पना मिला कर, व्यवहार से आदर्श का साम्य और सामंजस्य स्थापित कर और वर्तमान पर भविष्य का रंग चढ़ाकर वह रूप पेश करता है, जो जीवन से मिलता-जुलता है, फिर भी अनोखा है ।''[६]

इस उपन्यास का नायक सत्यधन एक ढुलमुल विचारों वाला आदर्शवादी युवक है । गरिमा और कट्टो को लेकर उसके मन में द्वन्द्व चल रहा है । गरिमा शहर की है, सुशिक्षित है, सम्भ्रांत और धनी परिवार की है । सत्यधन का एक मन उससे विवाह करना चाहता है, परन्तु जब वह अपने गाँव आता है तब अपने पड़ोस की बालविधवा कट्टो को लेकर उसके मन में करुणा का भाव पैदा होता है । कट्टो को लेकर वह चिंतित रहता है । यथा - ''फिर वह कट्टो के बारे में सोचने लगा । सोचा, क्या दुनिया के प्रति हम निश्चिंतो का कोई कर्तव्य नहीं है ? क्या संसार का सारा सुख हथिया लेना अन्याय नहीं है, उनके प्रति जिन्हें जिसका कण भी नहीं मिल पाया है ? और कुछ नहीं तो उनके खातिर क्या हम अपना सुख कम नहीं कर सकते ? कट्टो को इसी तरह रहने देकर मैं खुद कैसे विलासगर्त में डूब सकता हूँ ।''

तभी उसे एक समाधान दिखा । वह प्रसन्न हुआ । अवश्य यही होना चाहिए । कट्टो को विधवा कहना 'विधवा' शब्द की विडम्बना है । विधवा हो भी तो क्या उसका अवश्य विवाह होगा ?

इस समाधान से उसे चैन नहीं मिला । उसका विवाह हो चुकेगा, तभी मैं विवाह करूँगा, पहले नहीं ।[७]

गरिमा के परिवार में सत्यधन को लेकर बात चल रही थी । गरिमा भी सत्यधन को चाहती थी । गरिमा को इस बात की कहीं भनक पड़ जाती है कि सत्यधन के मन में गाँव की एक लड़की कट्टो को लेकर कुछ उधेड़बुन है । तब स्त्री सहज ईर्ष्या के कारण उसके मन में एक स्पर्धा भाव जगता है । गरिमा के पिताजी उन दोनों को निकट लाने के हेतु कश्मीर यात्रा का कार्यक्रम बनाते हैं । कश्मीर-यात्रा के दरमियान गरिमा के मन में कट्टो को लेकर जो स्पर्धाभाव है, वह उभरकर प्रत्यक्ष हो जाता है । लेखक ने इस प्रसंग का मनोवैज्ञानिक ढंग से चित्रण किया है, जिनकी परिगणना हम मनोवैज्ञानिक क्षण के अंतर्गत कर सकते हैं । उदाहरण प्रस्तुत है -

''अच्छा, जाने दो ।'' गरिमा ने कहा और तभी एक ताजे उठे हुए भाव से उसका चेहरा चमक गया । पूछा, ''अच्छा, मैं वैसी ही बन जाऊँ तो कैसा ?-''

''तुम्हें अच्छा लगेगा ?''

''तुम बन नहीं सकती ?''

''बन सकती हूँ, यही तो तुम जानते नहीं ।

''आप'' से ''तुम'' पर वह कब उतर आई थी सो उसे पता नहीं चला ।

''कैसे'' ?

''ऐसे -''

कहकर वह झट से भाग छूटी और पास के दरखत पर चढ़ गई, जैसे बन्दर की आत्मा उसमें आ गई हो। सत्य भी उस दरख्त के नीचे पहुँच गया? पहुँचाना था कि उसके सिर पर सूखे पत्तों और छोटी-छोटी टहनियों की बारिश हो पड़ी।

"अब कैसा ?"

"अब मैं पछताऊँगा।" सत्य ने कहा।

"पछताना नहीं। कट्टो को दुनिया में सब कुछ न मानने लगना। तकिये की बात है तो आज एक मुझसे ले लेना। तैयार रक्खा है।"[८]

३:०५:००

'मुक्तिबोध' उपन्यास में जैनेन्द्रजी ने सर्वथा एक नये विषय को आकलित किया है। "दुविधा का इतना जटिल, इतना गहन, इतना विस्तृत चित्रांकन शायद ही कहीं किया गया हो।" . . . अत्यंत प्रौढ़ और प्रगल्म मन के भावना-संसार को सहज रूप में प्रकट किया गया है। प्रौढ़ और परिपक्व प्रेम भावना की अभिव्यंजना भी अत्यंत संयत ढंग से करके इस लघुकाय उपन्यास को एक ऊँचा स्तर दिया गया है।[९]

प्रस्तुत उपन्यास सहाय बाबू, ठाकुर महादेवसिंह, भानुप्रतापसिंह, विक्रमसिंह, अंजली, राजश्री, नीलिमा, विरेश्वर तमारा आदि पात्रों के आसपास बुना गया है। सहायबाबू एक राजनीतिज्ञ है। राजश्री उनकी पत्नी है। अंजली उनकी बेटी है और उनके दामाद कुँवर साहब सहायबाबू की राजनीतिक स्थिति से लाभ उठाना चाह रहे हैं। तमारा एक रूसी आर्टिस्ट है। नीलिमा उपन्यास का एक बड़ा ही तेजस्वी पात्र है। नीलिमा की प्रौढ़ बुद्धिमत्ता पाठकों का ध्यान आकर्षित करती है। सहायबाबू और नीलिमा के बीच कुछ मधुर

संबंधों का संकेत भी मिलता है । नीलिमा के पति दर महोदय भारत सरकार में किसी ऊँचे पद पर हैं । प्रस्तुत उपन्यास में ऐसे अनेक स्थान मिलते हैं । जहाँ मनोवैज्ञानिक क्षणों का निरूपण हुआ है । सहायबाबू राजनीतिक छल-छदमों से उबकर उससे अलग हो जाना चाहते हैं । उस समय नीलिमा उन्हें राजनीति में आगे बढ़ने की सलाह देती है । वह सहायबाबू को कहती है कि जीना अंत तक संघर्ष में होता है । शांति पुरुषार्थ की नहीं होती, हार की होती है । सहायबाबू पर सम्मोहन-सा करते हुए नीलिमा कहती है - "स्त्री के पास प्रेम है । फिर उसे राजनीति का क्या करना है ? राजनीति करे वह जिस स्त्री के पास पुरुष न हो । वैसी अभागिन मैं बन सकती हूँ, क्या यह सम्भव है । नहीं राजनीति नहीं है ।" तुम नहीं लौट सकते । इस कहने में मुझे कौन-सा राज मिल जाता है । लेकिन पुरानी बातें याद करो । तुममें सपने थे और तुम्हारी नजर में उन सपनों को मैं अपनी तई देखने लगी थीं । आदमी सपने के लिए जीता हे और औरत उस सपने के आदमी के लिए जीती है । दर के साथ मैं रहती थी, जीती तुम्हारे लिए । तुम्हारे लिए - यानी जो सपने में चलता था और जो सपने में करता था । इसीलिए आज तुम हो कि सब कुछ होकर अपरिग्रही बने हुए हो । इसके भेद को मुझसे ज्यादा और कौन समझेगा ? लेकिन अब जो सोचने लग गये हो, वह शायद कर्तव्य है, सपना नहीं है । कर्तव्य से आदमी बँधता है, सपना उसे खोलता है . . . पर असल बात तो मेरी अपनी है। सपने से लौट-हार कर तुम जाओगे तो मेरे जीने के लिए क्या आधार रह जाएगा ।[१०]

नीलिमा की इस बात पर सहायबाबू कहते हैं - "सपना तो मेरा था, अब उसकी जगह कर्तव्य है तो मेरा है । तुम इसमें क्या चाहती हो ? इस पर नीलिमा 'मैं' कहते-कहते रूक जाती है और अवश-सी होकर कहती है - "कुछ नहीं चाहती । वचन लिया था, लो वापिस करती हूँ ।"[११]

SMT. HANSA MEHTA LIBRARY

यहाँ नीलिमा और सहाय बाबू के बीच संवाद के जो क्षण हैं उनकी गणना हम मनोवैज्ञानिक क्षणों के अंतर्गत कर सकते हैं । नीलिमा जिस प्रकार जिस अंदाज से बात रखती है और बाद में जिस अंदाज से बरज देती है उस में सहायबाबू अवश हो जाते हैं। नीलिमा की बात उनको माननी पड़ती है । हमारे शास्त्रकार शायद इसे ही 'कान्तासम्मित उपदेश' कहते हैं। गज़ल की दो पंक्तियाँ स्मृति में कौंध रही हैं -

"बस यूँ ही कहा था जरा तुमने,
बात तेरी सदा मनमानी हुई ।"

उक्त कथन में नीलिमा इसी प्रकार सहायबाबू को राजनीति न छोड़ने के लिए समझा लेती है । इस उपन्यास में नीलिमा और सहायबाबू को लेकर अनेक अंतरंग क्षणों का वर्णन मिलता है, जिनकी परिगणना हम मनोवैज्ञानिक क्षणों के अंतर्गत कर सकते हैं ।

३:०६:००

राघवेन्द्र मिश्र द्वारा प्रणीत 'पानी बीच मीन प्यासी' उपन्यास में ऐसे मनोवैज्ञानिक क्षणों का निरूपण कई स्थानों पर हुआ है । विमला इस उपन्यास की नायिका है । वह एक रूपवती स्त्री है और उसका यह रूपगर्व उपन्यास में अनेक स्थानों पर निरूपित हुआ है । विमला का पति हृदयरोग से पीड़ित है । अत: उसकी कामेच्छाएँ पूर्णरूपेण तृप्त नहीं होती है । फलत: वह नये-नये नायकों के शिकार की खोज में रहती है । सीमला में उसे एक ऐसा नायक मिल जाता है । लगातार प्रौढ़ अवस्था की नारियों के साथ सहवास करने के कारण उसका मन अधिक वय वाली स्त्रियों की तरफ कुछ अधिक ही झुकता है । उसकी कामभावनाएँ वयस्का नारियों के साथ बद्धमूल हो गई हैं ।

विमला ऐसे ही शिकारों की टोह में रहती है । अत: रूचि एकरूपता के कारण विमला खुश होते हुए अपना तर्क प्रस्तुत करती है - ''परकीया का प्यार पुनीत न हो, पर नारी को उसमें रस मिलता है और वह सदैव इच्छुक रहती है कि उसे एक उच्छृंखल छेड़खानी मिले जो एक नव वयस्का को मिलती है ।''[१२] विमला के उक्त कथन से स्पष्ट होता हे कि वह कम उम्रवाले पुरुषों के साथ उद्दण्ड, उच्छृंखल तथा आवेगपूर्ण सहवास की कामना रखती है । अत: सीमला में नरकुण्डा के गेस्ट हाउस में नायक को अपनी ओर आकृष्ट करने हेतु वह अपनी पुत्री रेखा को दृढ़ आलिंगन में बाँधकर कसती है । ऐसा करके वह नायक के हृदय में वासना का तूफान उठाना चाहती है और अन्ततोगत्वा वह उसमें सफल भी होती है । दूसरी रात वह नायक के साथ भावुकतापूर्ण क्षणों में व्यतीत करती है । इस प्रकार नायक के साथ वह शारीरिक सम्बन्धों को स्थापित कर लेती है और उसके सम्बन्ध आगे भी कायम रहते हैं । विमला को अपने पति का प्रेम पूर्णरूपेण मिला नहीं है । अत: वह परपुरुषों को अपने रूपाकर्षण में फँसाकर उनका शिकार करती है और उसीमें उसे एक विशेष प्रकार का ईर्ष्याजन्य आनंद प्राप्त होता है । अभुक्त कामेच्छा के कारण विमला का स्वभाव अत्यन्त ईर्षालु हो गया है । नायक के असंतुष्ट मन में अपने प्रति व्याकुलता जगाने के लिए वह नायक की पत्नी उमा से भी अपनी अंतरंग बात कह देती है, वह सोचती है कि अपने पति के ऐसे उच्छृंखल और बेवफा आचरण से उमा नाराज हो जाएगी, पति से झगड़ा करेगी और इस प्रकार उन दोनों में जब अनबन हो जाएगी तो उसका पूरा फ ायदा उठाते हुए वह नायक को परकीया प्रेम के लिए आकृष्ट करेगी । विमला की इस प्रवृत्ति के कारण ही वह नायक को उमा से विवाह करने के लिए प्रेरित करती थी । उन क्षणों का वर्णन लेखक इस प्रकार करते हैं - ''फिर हम तुम दोनों ही पाप करेंगे । अभी तो मैं ही सिर्फ गुनहगार हूँ, तुम तो नहीं हो और यह मुझे कचोटता है । शायद इससे

रस और मिले, प्यार में जितनी ही रूकावट होती है, उतना ही रस मिलता है ।''[१३]

रेखा इस उपन्यास का एक दूसरा सशक्त नारी पात्र है । वह विमला की युवा पुत्री है । माँ की कामुक प्रवृत्तियों के कारण उसकी शारीरिक भूख भी अधिक तीव्र हो गई है । उसे आश्चर्य होता है कि प्रौढ़ावस्था वाली उसकी माँ के शिथिल यौवन में लिप्त रहनेवाला नायक उसके मादक सौंदर्य की ओर क्यों आकर्षित नहीं होता ? उसे नायक में जो बद्धताग्रंथि (Fixation Complex) है उसका ज्ञान नहीं है । अत: वह नायक को इसी तरह उत्तेजित कर अपनी ओर आकर्षित करना चाहती है । इन क्षणों का बड़ा ही मनोवैज्ञानिक चित्रण लेखक ने किया है । रेखा अपने स्नानकक्ष में एक दूसरे काम के बहाने नायक को बुलाती है और अपने शारीरिक सौंदर्य का प्रदर्शन करती है । वह अपना अंगप्रदर्शन करते हुए कहती है - अंकल, गरम पानी नहीं आ रहा है, मैं तौलिया लपेट लेती हूँ, आप आकर जरा ठीक कर दें।[१४] संकेत पाकर नायक स्नानगृह में प्रवेश करता है । वहाँ का दृश्य देखकर वह मुग्ध हो जाता है । यथा - ''सामने रेखा खड़ी थी । पानी उसके जिस्म से चू रहा था । डिब-डिब । केश उसके भीगे थे । छोटे-छोटे उसके उरोज तौलिये के ऊपर थे । शायद उसे अहसास नहीं था कि उसे उरोज भी ढँक लेना चाहिए । क्या वह जान-बूझकर ऐसा कर रही थी ?''[१५] रेखा अपने अंगों के नग्न प्रदर्शन के द्वारा नायक को विचलित एवं वासनानुकूल बनाना चाहती है । कामांगों का प्रदर्शन भी एक प्रकार की विकृति है ज्सिमें गुप्तांगों के प्रदर्शन में नायक या नायिका को आनंद की उपलब्धि होती है। रेखा के व्यवहार से नायक उत्तेजित तो होता है, उसे आलिंगन भी देना चाहता है । परन्तु तत्काल वह ऐसा कर नहीं पाता, क्योंकि वह रेखा की भाँ विमला को प्यार करता हे और उसे मालूम है कि रेखा भी इस तथ्य से परिचित है । रेखा के इस व्यवहार के

बाद नायक में जो भाव जगते हैं उन क्षणों का मनोवैज्ञानिक वर्णन उपन्यास में मिलता है । नायक रेखा द्वारा स्पर्शित जल में बैठकर स्नान करता है । उसी टब में स्नान करके मानो परोक्ष रूप से वह नायिका का शारीरिक स्पर्श चाहता है । यह भी एक प्रकार की विकृति है जिसे 'क्रेटिसिज्म' कहते हैं इससे स्पष्ट होता है कि नायक भी रेखा को भोगना चाहता है पर उसकी माँ को लेकर उसके मन में जो फिक्सेशन है वह उसमें अवरोधरुप होता है ।

प्रस्तुत उपन्यास का नायक जब दिल्ली रहने आ जाता है तब रेखा उसे प्रतिदिन आमंत्रित करती है । रेखा के कहने पर नायक जब उसके यहाँ पहुँचता है, उस समय की सारी स्थितियों को हम मनोवैज्ञानिक क्षणों के अंतर्गत रख सकते हैं । रेखा नायक को संवनन की प्रक्रियाओं के लिए तो प्रोत्साहित करती है, परन्तु समागम की स्थिति को नकार देती है । रेखा और नायक के बीच का वह समय दोनों के लिए द्वन्द्वात्मक स्थितियों से परिपूर्ण है । नायक रेखा की चेष्टाओं से उसे पाने का प्रयत्न करता है, उसके स्कर्ट की ओर अपना हाथ बढ़ाता है, कई बार सोचता भी है कि उसे जबरदस्ती प्यार कर लूँ । परन्तु रेखा ऐसी स्थितियों में कोई-न-कोई बहाना बनाकर वहाँ से खिसक जाती है ।[१६] इस प्रकार रेखा की मानसिक स्थिति में नायक के प्रति स्वीकार और तिरस्कार की जो एक जटिल प्रवृत्ति मिलती है वह उसके अंतर्मन में चलनेवाले द्वन्द्व का प्रतीक है । उस समय रेखा के व्यक्तित्व में 'इद और इगो' का संघर्ष चलता है । रेखा एक अहमवादी (Egoist) लड़की है । स्त्री सहज ईर्ष्या के कारण वह माँ के प्रेमी की ओर बढ़ती है, उसमें उसका नारी सहज इगो कदाचित् संतुष्ट होता है । उस समय विमला उसकी मां नहीं, एक नारी होती है और एक नारी से उसके प्रेमी को छिनने की एक आंतरिक संतुष्टि का उसे अहसास होता है । परन्तु नायक को वह मन से नहीं चाहती, मन से तो वह घृणा करती है । अत: संवनन की

क्रियाओं से आकृष्ट होकर नायक जब समागम के लिए अग्रसरित होता है, तब वह उसे अलग छिटककर भाग खड़ी होती है । इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास में अनेक प्रसंगों में हमें मनोवैज्ञानिक क्षणों का सटीक निरूपण मिलता है ।

३:०७:००

'प्रेत और छाया' इलाचन्द्र जोशी का एक मनोवैज्ञानिक उपन्यास है । प्रस्तुत उपन्यास का नायक पारसनाथ तिबेट के कालिमयोंग क्षेत्र में रहता है। उसकी शिक्षा एम.ए. तक है । उसके पिता की अपनी फैक्टरी थी और वे काफी साधन-सम्पन्न थे । वे दिन भर शराब पीते रहते और अनेक भूटानी स्त्रियों से उनके सम्बन्ध थे । वह अपने पिता से घृणा करता है और उन्हें 'तिब्बती दानव' कहता था । एक दिन उसके पिता पारसनाथ को बुलाकर कहते हैं - ''तुझे मालूम है, छोकरा कि तू अपने बाप का यानि अपनी माँ के पति का बेटा नहीं है ? तेरा बाप मैं नहीं बल्कि शिवशंकर वैद्य है । उस चमार को तुने भी अक्सर अपनी माँ के पास आते-जाते देखा होगा । तेरी सूरत आधी उस चमार से मिलती है और आधी अपनी माँ से । तेरी उस कुल्टा माँ के कारण ही मुझे गाँव की जमींदारी छोड़कर यहाँ इतनी दूर आना पडा है ।''[१७] पिता की इस बात के कारण पारसनाथ कुंठित हो जाता है । स्त्री जाति को वह नफरत करने लगता है । उसकी माँ समझती हे कि किसी प्रेत की छाया के कारण पारसनाथ ऐसा हो गया है । उसके बाद पारसनाथ दार्जिलिंग की एक स्कूल में अध्यापक की नौकरी करता है । वहाँ एक कार्निवल में रईबेका नामक एक पहाड़ी लड़की से वह मिलता है । दोनों के बीच तीव्र आकर्षण उत्पन्न होता है । उन दोनों में शारीरिक संबंध भी स्थापित होते हैं । रईबेका जब उसके सामने विवाह का प्रस्ताव रखती है तो

वह कहता है - व्यभिचारिणी माता और क्रूर तथा कपटी पिता ने जो सबक मुझे सिखाया हे उसका असर कहाँ जाएगा । मैं क्यों किसी स्त्री से स्थायी संबंध जोड़ूँ ?[१८]

पारसनाथ दार्जीलिंग से कलकत्ता भाग जाता है । वहाँ वह पुस्तकों की डिज़ाईन और बाजारु किस्म के चित्र बनाकर अपना जीवन निर्वाह करता है। यहां उसके जीवन में मंजरी नामक एक बीस वर्षीय खूबसूरत युवती आती है । मंजरी अपनी बीमार माँ के लिए होटल में धंधा करती थी । पारसनाथ मंजरी की माँ की सेवा करता है और उसकी मृत्यु के बाद मंजरी को अपने घर ले आता है । दोनों पति-पत्नी के रूप में रहने लगते हैं । उन दिनों में पारसनाथ भुजौरिया नामक व्यक्ति के संपर्क में आता है । भुजौरिया नपुंसक व्यक्ति था । अत: वह चित्रकला सिखने के बहाने अपनी पत्नी नंदिनी को पारसनाथ के पास भेजता है । मंजरी जब गर्भवती हो जाती है तब वह नंदिनी को लेकर लखनऊ भाग जाता है । लखनऊ में वह नंदिनी की बहन निर्मला के यहाँ रहता है । यहाँ वह पहली बार नंदिनी को भोगता है । वह ऐसा समझता है कि भुजौरिया तो नपुंसक था। अत: नंदिनी का कौमार्य खंडित नहीं हुआ होगा । नंदिनी को भोगते हुए वह सोचता है - ''किसी गुणवंती और शीलवंती स्त्री का पतिव्रत खंडित करने से हम नरक के कीड़ों की सबसे बड़ी महत्वकांक्षा की पूर्ति होती है । इसलिए आज मेरे नारकीय जीवन की चरम सफलता का दिन है क्योंकि मैं केवल इस स्त्री का पतिव्रत खंडित करने में ही ममर्थ नहीं हुआ हूँ, बल्कि यह आज हर तरह से मेरे अधीन है ।''[१९] किन्तु उसकी यह खुशी ज्यादा समय नहीं टिकती, क्योंकि एक दिन नंदिनी कह देती है कि कुछ वर्ष पहले वह वेश्या थी । पारसनाथ की विजयभावना पराजय में बदल जाती है । वह नंदिनी को कहता है - तुम्हारा दोष नहीं है, तुम्हारी जाति का है । वेश्या जाति नहीं, स्त्री जाति मात्र

का ।[२०] वास्तविकता ज्ञात होने पर भी वह नंदिनी को छोड़ता नहीं है, वह सोचता है कि वह यदि प्रेत है तो नंदिनी उसकी छाया है ।

नंदिनी को नीचा दिखाने के लिए वह उसकी नौकरानी हीरा को कलकत्ता भगा कर ले जाता है । दोनों होटल में ठहरते हैं । हीरा को पीड़ित करने के लिए काम धंधे के बहाने से वह उससे पन्द्रह हजार रूपये ऐंठ लेता है और उसे वहाँ होटल में अकेले छोड़कर घूमने चला जाता है । वहाँ उसे उसके पिता का पुराना नौकर मिलता है । उसके पिता की हालत बहुत ही खराब थी । पारसनाथ अपने पिता को घृणा करता है, तथापि उनको मानसिक आघात देने के लिए वह हीरा को साथ लेकर अपने पिता के यहाँ जाता है। हीरा एक कुलवधू की तरह बाबा के पैर छूती है । किन्तु पारसनाथ अपने पिता को आघात देने के लिए हीरा का असली परिचय देते हुए कहता है कि वह एक वेश्या है । इसके बावजूद भी पारसनाथ के पिता हीरा को अपनी बहू के रूप में स्वीकार करते हैं । उस समय पारसनाथ के पिता अपने जीवन के एक रहस्य को खोलते हुए कहते हैं कि - ''मैं भलीभांति जानता था कि तुम्हारी माँ के रक्त की एक-एक बूँद में सतीत्व की भावना कूट-कूट कर भरी हुई थी । शायद इसी प्रतिक्रिया के फल से मेरे विरत मन को यह विश्वास करने की इच्छा हुई कि वह घोर असती है ।''[२१] पिता की इस बात को सुनकर कि उसकी माँ भी सती है और वह नाजायज नहीं बल्कि जायज संतान है । पारसनाथ की समस्त गांठे छूट जाती है और वह हीरा के साथ शादी कर सुखी दाम्पत्य जीवन व्यतीत करता है ।

प्रस्तुत उपन्यास में पारसनाथ का पिता जब उसे नाजायज औलाद बताता है, उसके बाद वह जिस मानसिक उहापोह से गुजरता है, वे क्षण मनोवैज्ञानिक हैं । उसके बाद रईबेका जब उसके सामने विवाह के प्रस्ताव

को रखती है उसके बाद के क्षणों को भी हम मनोवैज्ञानिक क्षणों के अंतर्गत रख सकते हैं । इसी प्रकार मंजरी, नंदिनी और हीरा के साथ पारसनाथ के जो संबंध बनते हैं उसके पीछे भी उसका वही मानस काम करता है । नंदिनी का पति भुजौरिया एक नपुंसक व्यक्ति था । अत: नंदिनी को भोगते समय पारसनाथ के मन में एक शीलवंती स्त्री को वह भोग रहा है ऐसा अहसास था । परंतु जब वह नंदिनी के मुँह से सुनता है कि वह कभी वेश्या रह चुकी थी । तो उसकी खामख्याली टूटती है और वह डिप्रेशन की जिस अवस्था से गुजरता है उन तमाम क्षणों को हम मनोवैज्ञानिक क्षण कह सकते हैं । मरणासन्न अवस्था में पारसनाथ के पिता रहस्य का घटस्फोट करते हुए बताते हैं कि वह जायज औलाद थी और उसकी माँ एक सती साध्वी स्त्री थी । तब पारसनाथ की तमाम ग्रंथियों का निरसन हो जाता है और वह चित्त की एक उदात्त स्थिति में विचरण करने लगता है । उस समय की उसकी जो मानसिक स्थिति है उसे भी हम मनोवैज्ञानिक क्षणों के अंतर्गत रख सकते हैं । यह उन क्षणों का ही परिणाम है कि वह हीराबाई को पत्नी के रूप में स्वीकार करता है, यह जानते हुए भी कि वह कभी वेश्या रह चुकी है ।''

३:०८:००

अज्ञेय का 'शेख़र एक जीवनी' तीन भागों में परिकल्पित उपन्यास है। उसके सिर्फ दो भाग प्रकाशित हुए हैं । तीसरा भाग प्रकाशित नहीं हो सका । उपन्यास का प्रथम भाग तीसरे भाग के अंत से शुरू होता है । इस प्रकार यह उपन्यास रेखानुसार (Leanyer) न होकर चक्राकार (fugal) है । शेखर को फांसी की सजा हुई है । उसके जीवन का अंतकाल आ गया है । वहाँ से स्मृतियों के रूप में उपन्यास उभरकर आता है । शेखर के जीवन में दो लड़कियाँ आती हैं - शारदा और शशि । शशि उसकी 'शिशु सखी' है ।

शशि के सहवास में रहकर वह जान पाता हे कि वह बहिनापा क्या है । शेखर के पिता का तबादला जब मद्रास हो जाता है, तो शेखर को भी मद्रास जाना पड़ता है । शेखर के जीवन में शारदा का प्रवेश इसी दक्षिण निवास के समीप होता है । एक दिन शारदा की प्रतीक्षा करते-करते वह अनुभव करता है कि वह शारदा से प्यार करता है, परन्तु मैट्रिक की परीक्षा देने उसे लाहौर जाना पडता है । शेखर के जीवन में यह वयःसंधि की अवस्था है । शारदा के प्रेम से आक्रान्त शेखर के जीवन में तब शशि का प्रवेश होता है । यद्यपि शशि शेखर की बचपन की सहेली है। परन्तु अब उसके प्रति जो आकर्षण है वह दूसरे प्रकार का है । शशि लाहौर में रहती है । अत: पंजाब प्रदेश को वह शशि का प्रदेश कहता है और दक्षिण प्रदेश को वह शारदा का प्रदेश कहता है । परीक्षा के बाद शेखर जब दक्षिण लौटता है तब शारदा के घर ताला पड़ा हुआ है । कुछ दिनों बाद उसकी भेंट शारदा से त्रिवेन्द्रम में होती है । शारदा उसे कहती है कि वह उसे नहीं चाहती । शेखर अनुभव करता है कि सब कुछ समाप्त हो गया है और वह शारदा के देश से विदा लेता है । उपन्यास के 'शशि और शेखर' खण्ड में शेखर और शशि के प्रेम संबंधों का निरूपण है । परन्तु शशि दूर के रिश्ते में शेखर की बहन है और उसका विवाह अन्यत्र हो गया है । शेखर शशि को बार बार मिलता है । यह उसके पति को अच्छा नहीं लगता । अंतत: शशि का पति मारपीट कर शशि को निकाल देता है । शशि और शेखर साथ रहने लगते हैं । पर शशि असाध्य रूप से व्याधिग्रस्त हो जाती हे और अंत में उसकी भी मृत्यु हो जाती है। शेखर पूरी तरह से शशि की तीमारदारी में लग गया है । शशि हमेशा उसे लिखने के लिए प्रेरित करती है । एक बार शेखर कुछ लिख रहा होता है, तब शशि उसके कंधे पर झुककर वह जो कुछ लिख रहा था उसे वह पढ़ लेती है । शेखर लजा जाता है और पूछता है कि मैं जो कुछ लिखता जा रहा हूँ क्या वह सब तुम पढ़ती रही हो ? उस समय भावावेग में शशि जो

कहती है, वे क्षण बड़े ही मनोवैज्ञानिक हैं । बाद में जेल की काल-कोठड़ी में बैठकर भी शेखर उन क्षणों को याद करता है । वह सोचता है कि क्या जेल के लाल टेन के फीके आलोक में शशि पढ़ती होगी कि मैं क्या लिख रहा हूँ ? कंधे पर वह शशि के साँस का स्वर अनुभव करता है और वह सोचता है कि शशि चिल्लाई नहीं है । अत: उसने जो लिखा है वह सही नहीं है । जिन क्षणों को शेखर जेल में याद करता है उनका निरूपण उपन्यास में इस प्रकार हुआ है :- ''शेखर, एक दिन मैं नहीं रहूँगी, तब तुम बहुत बड़े आदमी होंगे और कम्पोजिटर तुम्हारी मेज के पास खड़े होकर रहेंगे कि तुम्हारे हाथ से कागज छीनकर ले जाए । पर तब भी मैं यों ही पीछे खड़ी होकर पढ़ा करूँगी और तुम भी जानोगे । लेकिन अगर अच्छा नहीं लिखोगे तो मैं तुम्हारे कान में चिल्ला दूँगी ।''[२२] इसी शशि ने एक बार शेखर को अनुभव का सच लिखने को कहा था । वह शेखर से कहती है - ''तुमसे भी बड़ा अनुभव हो सकता है जरूर, पर मैं कहती हूँ, जो सत्य तुमने देखा है, जिसका अपने रक्त में अनुभव किया है उसकी बात लिखो तो अवश्य लेखनीय होगी । बात बड़ी नहीं होनी चाहिए बात का अनुभव बड़ा चाहिए। आदमी की पकड़ बड़ी चाहिए । बात को वश में करने की लगन और साहस ।'' तब शेखर कहता है - ''तब तो तुम्हारी कहानी लिखूँ, निजी सत्य ।'' उसके उत्तर में शशि कहती है - ''हाँ जब मैं भी ऐसा सत्य हो जाऊँगी, निरा सत्य, जिसे तुम तटस्थ होकर देख सकते हो, तब मेरी कहानी लिखना और कहानी ऐसी बुरी नहीं होगी शेखर ।''[२३]

प्रस्तुत उपन्यास में शशि शेखर के अंतरंग वार्तालाप के ऐसे अनेक प्रसंग आते हैं जिनकी गणना हम मनोवैज्ञानिक क्षणों के अंतर्गत कर सकते हैं ।

३:०९:००

अज्ञेय द्वारा प्रणीत 'अपने अपने अजनबी' अस्तित्ववादी जीवन-दर्शन पर आधारित मनोवैज्ञानिक उपन्यास है । अस्तित्ववादी कृतियों में अस्तित्व बोध की भावना विशेषतया निहित रहती है । अस्तित्ववादी चिंतकों का मानना है कि मानवजीवन की अनिश्चितता एवं विवशता उसे अपनी अस्तित्व रक्षा के लिए प्रेरित करती है । उनका मानना है कि जीवन सीमित है, अनिश्चित है और उसके अस्तित्व की रक्षा के लिए उसे कोई आकार प्रदान करना है । अत: अस्तित्ववाद में प्रत्येक क्षण का महत्व है । वे क्षण को उसकी असीमता में पकडने की चेष्टा करते हैं ।[२४] चूंकि अस्तित्ववादी चिंतन में क्षण का महत्व है, ऐसे उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक क्षणों के निरूपण का महत्व अत्यन्त स्वाभाविक समझा जाएगा। 'अपने अपने अजनबी' उपन्यास में सेलमा और योके मृत्यु के मुख में है । किसी भी क्षण मौत उनको अपने आगोश में ले सकती है । अत: इस अवश्यंभावी मृत्यु के संघर्ष को खेलने के लिए दोनों अपने-अपने स्वप्निल अतीत में खो जाते हैं । अतीत स्मृतियों के इन क्षणों को हम मनोवैज्ञानिक क्षण के रूप में ले सकते हैं । 'अपने अपने अजनबी' उपन्यास मानव-मन की तीन मूलभूत वृत्तियाँ - अहम्, सेक्स और भय - में से एक ऐसी भय की प्रवृत्ति से आक्रान्त उपन्यास है। इसे एक प्रकार से हम मृत्युबोध का आख्यान कह सकते हैं। उपन्यास में मुख्य पात्र तीन हैं - सेलमा, योके और यान । ये तीनों पात्र पूरे उपन्यास में मृत्युभय से त्रस्त एवं आक्रान्त हैं । सेलमा एक केन्सर ग्रस्त वृद्ध महिला है । योके एक स्वप्नजीवी युवती है । दोनों बर्फानी प्रदेश के एक काठघर में कैद हो जाते हैं । यह काठघर बरफ के नीचे दब गया हे और वहाँ से बाहर निकलने का कोई रास्ता नजर नहीं आ रहा है । सेलमा और योके दोनों को लगता है कि उनका बचना नामुमकिन है । मृत्यु निश्चित है, तथापि सेलमा

काठघर में क्रिसमस मनाती है, गीत गाती है। अपनी सह हीमकैदी योके को नये साल का मुबारकबाद देती है। निर्जीव वस्तुओं को दुलारती है। वस्तुत: सेलमा मृत्यु भय से बचने के लिये ही यह सब करती है। दूसरे योके की तुलना में मृत्यु का भय सेलमा में कम होने का एक कारण यह भी हो सकता हे कि सेलमा केन्सरग्रस्त है, वृद्ध है। मृत्यु उसके लिए वरदान भी सिद्ध हो सकता है। दूसरी तरफ योके के सामने पूरी जिन्दगी पड़ी है। अत: सेलमा की इन प्रवृत्तियों को लेकर योके मन ही मन चिढ़ती है। उसकी इर्ष्या करती है। सेलमा के साथ बिताये हुए योके के इन क्षणों को हम मनोवैज्ञानिक क्षणों के अंतर्गत रख सकते हैं। सेलमा के जीवन में मृत्यु के साक्षात्कार का प्रसंग पहले भी आ चुका है। एक बार भयंकर बाढ़ में वह नदी के एक टूटे हुए पुल पर फँस जाती है। चारों तरफ जल-प्रलय जैसी स्थिति है। उस समय उसके साथ यान नामक एक फोटोग्राफर था जो भूख और प्यास की यातना न सह पाने के कारण बाढ़ के पानी में छलांग लगाकर आत्महत्या कर लेता है। सेलमा उस समय बच गयी थी। किन्तु मृत्यु के साक्षात्कार के उन क्षणों को उसने देखा और झेला था। सेलमा के उन क्षणों को भी मनोवैज्ञानिक क्षणों में परिगणित कर सकते हैं।

काठघरवाली घटना में सेलमा मर जाती है, योके किसी तरह बच निकलती है। परन्तु जर्मन सैनिकों के हाथ में पड़ जाती है। वे लोग योके को अपनी वासना का शिकार बनाते हैं। जर्मन सैनिकों द्वारा बलात्कृत होने पर योके का प्रेमी भी उसे ठुकरा देता है। फलत: योके मृत्यु का वरण करना चाहती है। काठघर में बरफ शिलाओं के नीचे दबी थी तब वह जीवन की कामना कर रही थी। अब बच जाने पर हताश होकर वह मरना चाहती है। किन्तु वह किसी अच्छे आदमी की बाहों में मरना चाहती है। इन स्थितियों में उसे जगन्नाथन नाम का एक भारतीय युवक मिल जाता है। जगन्नाथन

योके को चाहता भी है, किन्तु योके अब जीना नहीं चाहती । वह मानों ईश्वरीय न्याय के प्रति विद्रोह करती है । जहर खाकर जगन्नाथन की बाहों में मरना इसी प्रवृत्ति का द्योतक है । जर्मन सैनिकों द्वारा बलात्कार की घटना के बाद योके का प्रेमी उसे छोड़ देता है । उस समय योके के जीवन के जो निराशा और अंधकार पूर्ण क्षण है उनको भी हम मनोवैज्ञानिक क्षणों की कोटि में रख सकते हैं ।

३:१०:००

'नदी के द्वीप' अज्ञेयजी का एक चरित्रप्रधान उपन्यास है । उसमें लेखक ने भुवन, चन्द्रमाधव, रेखा और गौरा इन चार पात्रों के आसपास संवेदनाओं के ताने बाने बुने हैं ।

भुवन एक वैज्ञानिक है । वह अपने मित्र और पत्रकार चन्द्रमाधव के यहाँ लखनऊ आता है । चन्द्रमाधव के घर पर ही भुवन का रेखा से परिचय होता है । उस प्रथम मुलाकात में ही भुवन यह अनुभव करने लगता है कि रेखा के पास रूप भी है और बुद्धि भी है, किन्तु बुद्धि मानों तीव्र संवेदनाओं के साथ गुंथी हुई है और रूप एक अदृश्य, एक अस्पृश्य कवच-सा पहने हुए है ।[२५] भुवन वैज्ञानिक होते हुए भी काफी भावुक किस्म का व्यक्ति है । वैज्ञानिक भुवन की संवेदनापूर्ण दृष्टि से रेखा और रेखा की आलोकदिप्त बुद्धि से भुवन प्रभावित होता है । चन्द्रमाधव के द्वारा उसे ज्ञात होता हे कि रेखा विवाहित तो है लेकिन छः वर्ष से अपने पति से अलग रह रही है । वह एक आत्मनिर्भर महिला है । नौकरी करके अपने पैरों पर खड़ी है, किसी की मोहताज नहीं है । रेखा को भी चन्द्रमाधव से ज्ञात होता हे कि भुवन अकेला और अविवाहित है । लखनऊ में रेखा भुवन को गोमती के किनारे रवीन्द्र संगीत भी सुनाती है । लखनऊ से रेखा और भुवन एक ही ट्रेन से किन्तु

अलग-अलग डिब्बों में यात्रा करते हैं । हर स्टेशन पर आकर भुवन रेखा से वार्तालाप करता है । प्लेटफ ोर्म पर दोनों साहित्यिक चर्चा करते हैं । इस साहित्यिक चर्चा के दौरान बंगला, अंग्रेजी तथा हिन्दी की कई कविताओं की पंक्तियाँ आती हैं । रेखा को प्रतापगढ़ उतर जाना था । भुवन को आगे इलाहाबाद जाना था । प्रतापगढ़ स्टेशन पर भुवन रेखा को विदा देने के लिए उतरता है । बातों ही बातों में गाडी यकायक चल पडती है । तब भुवन को रेखा का स्पर्श होता है । भुवन इस स्पर्श की चुनमुनाहट को कई-कई घंटों तक अनुभव करता है । गाड़ी में अपनी सीट पर बैठने पर भी वह रेखा की स्मृतियों में खो जाता है ।

रेखा और भुवन के जाने के बाद चन्द्रमाधव कुछ अनमना-सा हो जाता है । अत: वह सिनेमा देखने चला जाता है । चन्द्रमाधव अपने गृहस्थ जीवन से संतुष्ट नहीं है । वह भी रेखा को प्रेम करता है और उसे अपनी तरफ आकृष्ट करने का प्रयत्न भी करता है । पर वह उसमें सफल नहीं होता। ऐसे में जब वह देखता है कि रेखा भुवन की ओर आकृष्ट हो रही है तब इर्ष्या के कारण उसका अंतर्मन आहत होता है । भुवन को बीच में रखकर वह रेखा के अधिक निकट जाने का प्रयत्न करता है । इस उपक्रम में वह रेखा के सामने भुवन के साथ पहाड़ जाने का प्रस्ताव रखता है । चन्द्रमाधव की नारी-लिप्सा रेखा के लिए ही है, ऐसा नहीं है । वह भुवन की शिष्या गौरा से भी सम्बन्ध स्थापित करना चाहता है । गौरा को वह भुवन के वहाँ मिलता था और तब से बराबर गौरा से मिलने और सम्बन्ध स्थापित करने के लिए वह तत्पर रहता है । चन्द्रमाधव जब परदेश जाता है तो वहाँ से भी वह बराबर गौरा को पत्र लिखता रहता है परन्तु गौरा अपनी तरफ से कोई दिलचस्पी नहीं दिखाती है । गौरा के सामने बी.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण करने का सवाल था । उसके बाद उसके सम्मुख विवाह का प्रश्न आता है, जिसे

ठुकराकर वह मद्रास संगीत की शिक्षा के लिए चली जाती है ।

उपन्यास में भुवन, चन्द्रमाधव, रेखा और गौरा के पारस्परिक संबंधों के तानोबानो को बुना गया है । गौरा और रेखा दोनों भुवन की ओर आकृष्ट है, जबकि दूसरी ओर चन्द्रमाधव भी रेखा और गौरा दोनों को चाहता है। इस कारण चन्द्रमाधव भुवन से भीतर ही भीतर जलता भी है । भुवन और गौरा एक दूसरे के बहुत निकट है, तथापि जब गौरा के विवाह का प्रश्न आता है, तब भुवन रंचमात्र भी विचलित नहीं होता और गौरा से कहता है कि इस संदर्भ में उसे स्वयं निर्णय लेना चाहिए, उसी प्रकार रेखा से प्रभावित होने के बावजूद वह असंपृक्त-सा रहता है । चन्द्रमाधव रेखा और गौरा दोनों को पत्र लिखता रहता है । गौरा के पत्र में भुवन रेखा की ओर आकृष्ट हो रहा है ऐसा लिखकर वह उन दोनों के सम्बन्धों में दरार पैदा करने की कोशिश कर रहा है । दूसरी तरफ वह रेखा को पत्र लिखता है जिसमें वह उससे प्रेम निवेदन करता है । इस संदर्भ में रेखा भुवन को पत्र लिखती है और अपना दु:ख व्यक्त करती है ।

दिल्ली मुलाकात के दरम्यान रेखा और भुवन एक दूसरे के अधिक निकट आते हैं । जंतर-मंतर देखते हुए रेखा भुवन को वहाँ से अचानक चल देने के लिए कहती है क्योंकि इस स्थान के साथ उसके जीवन का एक कटु प्रसंग जुड़ा हुआ था । इसके बाद वे दोनों और भी निकट आते हैं । रेखा को पहाड़ों पर जाना था । भुवन उसे छोड़ने आता है, और फिर स्वयं उसके साथ चल पड़ता है । वहाँ नैनिताल में नवकुठिया ताल के डाकबंगले में वे ठहरते हैं । एक दिन रेखा सोये हुए भुवन को जगाकर कहती है - ''मैं तुम्हारी हूँ, भुवन मुझे लो ।''[२६] एक विशिष्ट सौंदर्य-बोध से अभिभूत भुवन रेखा के उस समर्पण को स्वीकार करने में उस समय तो स्वयं को

असमर्थ पाता है । वहाँ से भुवन कश्मीर जाने के लिए निकलता है तो पहले गाँव के मोटर अड्डे पर रेखा उसे मिलती है । भुवन की अनुमति से वह भी उसके वैज्ञानिक प्रयोगों को देखने के लिए कश्मीर चल पडती है । वहाँ तुलियन झील पर वे ठहरते हैं । यहाँ भुवन और रेखा एक दूसरे को समर्पित होते हैं । रेखा नारी जीवन की सार्थकता का 'फुलफिलमेन्ट' का 'प्रथम बार' अनुभव करती है । रेखा की प्रसन्नता से भुवन भी स्वयं को सार्थक समझता है । इस समर्पण के कारण दोनों को सर्वत्र एक 'नया गहरा अर्थ' प्राप्त होता है ।[२७]

चन्द्रमाधव रेखा और भुवन की कश्मीर यात्रा से और भी जल भुन जाता है । अब वह प्रतिनायक-सा व्यवहार करने लगता है । भुवन और गौरा के सम्बन्धों को खूब बढ़ा चढ़ाकर वह रेखा के सामने रखता है । रेखा और गौरा को एक दूसरे से भिड़ाने के लिए वह एक बार उन्हें मिलाती भी है। प्रारंभ में वे दोनों उखड़ी-उखड़ी-सी रहती हैं, किन्तु कुछ ही समय में रेखा के सौहार्दपूर्ण व्यवहार के कारण दोनों में सख्य स्थापित हो जाता है । रेखा अपने विवाह की अंगूठी गौरा को देती है जिससे यह संकेतित होता है कि वह भुवन और गौरा के सम्बन्धों को चाहती है ।

तुलियन झील से लौटने के पश्चात रेखा भुवन को अपनी गर्भवती अवस्था के संदर्भ में लिखती है । रेखा का पत्र पाते ही भुवन उसके पास दौड़ा चला आता है और उसके सामने विवाह का प्रस्ताव भी रखता है, किन्तु रेखा भुवन के प्रस्ताव को न स्वीकार करते हुए कहती है - ''मैंने तुमसे प्यार माँगा था तुम्हारा भविष्य नहीं माँगा था और न मैं वह लूँगी ।''[२८]

भुवन द्वारा गर्भवती होने पर रेखा स्वयं को गौरवान्वित अनुभव करती है । किन्तु उसके भाग्य में कदाचित यह सुख नहीं लिखा था । उन्हीं

दिनों में रेखा का पति हेमेन्द्र भारत लौट आता है । चन्द्रमाधव से उसकी भेंट होती है । वे दोनों रेखा को तरह-तरह से यंत्रणा देने का प्रयास करते हैं । हेमेन्द्र के पत्र से रेखा भावावेश में आकर गर्भपात करा लेती है । इस गर्भपात से रेखा के स्वास्थ्य पर बुरा असर पडता है । वह शारीरिक और मानसिक रूप से टूट जाती है । गर्भपात के समाचार से भुवन जब सातवें दिन आता है तब रेखा एकदम मरणासन्न अवस्था में थी । स्वास्थ्य ठीक होने पर रेखा कलकत्ता अपनी मौसी के वहाँ चली जाती है । गर्भपात की बात से भुवन रेखा पर नाराज हो जाता है और उसके किसी पत्र का उत्तर नहीं देता । दूसरी तरह उस भृण हत्या के लिए भुवन हमेशा अपराधबोध से त्रसित रहता है । रेखा के तलाक के बाद चन्द्रमाधव फिर एक बार रेखा को पाने की कोशिश करता है, परन्तु उसमें वह सफल नहीं हो पाता । रेखा की तबीयत एकदम खराब हो जाती है । डॉ. रमेशचन्द्र उसकी जान बचाते हैं । डॉ. रमेशचन्द्र के व्यक्तित्व से रेखा प्रभावित होती है और वह अन्ततः उससे विवाह कर लेती है । दूसरी तरफ गौरा और रेखा के बीच झुलता हुआ भुवन इधर-उधर भटकता रहता है । मसूरी जाता है । दूसरे विश्वयुद्ध के छिड़ जाने पर जापान युद्ध में कूद पडता है । रेडिया प्रोग्राम के लिए अंदमान जाता है । जब जापान भारतीय भूमि पर बम्ब वर्षा करता है तब वह सेना में भर्ती हो जाता है । रेखा के विवाह पर भुवन उसे शुभकामनाएँ प्रेषित करता है । इस दरम्यान वह बीमार हो जाता है । तब रेखा उसे मिलने जाती है और इस भटकन से उबरने के लिए भुवन को गौरा से विवाह कर लेने की सलाह दे देती है । युद्ध से वापस लौटने पर भुवन गौरा को लॉरेन्स की 'ए मैनिफेस्टो' की कविता पढ़ने के लिए कहता है । कविता पढ़ने पर गौरा उसे रेखा को भिजवाती है और कहती है कि उस कविता की वह पंक्ति रेखा के लिए ही है । उपन्यास के अंत में हम पाते हैं कि भुवन बर्मा फ्रन्ट पर है । एकान्त पाने पर गौरा को पत्र लिखता है जिसमें वह विवाह का प्रस्ताव रखता है । किन्तु बाद में वह

पत्र नष्ट कर देता है । उपन्यास के अंत में भुवन को हम एक खिड़की के पास विचारमग्न अवस्था में देखते हैं जिसमें वह उस स्पर्श की स्मृतियों में खो जाता है जो प्रतापगढ़ जाते समय उसे रेखा द्वारा प्राप्त हुआ था ।

प्रस्तुत उपन्यास में 'man in action' के स्थान पर 'man in contemplation' का चित्रण अधिक हुआ है । फलत: इसमें अनेक स्थानों पर मनोवैज्ञानिक क्षणों का निरूपण हुआ है । रेखा के चले जाने के बाद भी बहुत देर तक भुवन रेखा के स्पर्श का अनुभव करता है । इन तमाम क्षणों को मनोवैज्ञानिक क्षणों में ले सकते हैं । यहाँ प्रत्येक पात्र के संदर्भ में मनोवैज्ञानिक क्षणों की स्थिति अलग-अलग ढंग से दृष्टिगत की जा सकती है । भुवन का रेखा से अलग बिताया हुआ स्वप्न, गौरा की विगत स्मृतियाँ, रेखा द्वारा गर्भपात कराने के बाद की स्थिति तथा मरणासन्न रेखा को देखने के बाद की स्थिति जैसी क्षणों को भुवन के संदर्भ में मनोवैज्ञानिक क्षणों के अंतर्गत परिगणित कर सकते हैं । तो रेखा के संदर्भ में भुवन की स्मृतियों में बिताये क्षण, रेखा के पति के लौटने पर उत्पन्न हुई स्थितियाँ, भुवन के साथ के fulfilment के क्षण, भुवन द्वारा शिशु प्राप्त करने के संतोष के क्षण, गर्भपात के पहले और बाद के क्षण, भुवन द्वारा बर्मा बॉर्डर पर जाने के समय के क्षण अत्यन्त ही संवेदनशील हैं । फलत: उनकी गणना मनोवैज्ञानिक क्षणों के अंतर्गत हो सकती है ।

गौरा के संदर्भ में, गौरा के भुवन की स्मृतियों में बिताये क्षण, चन्द्रमाधव के पात्र में रेखा और भुवन के सम्बन्धों को पढ़कर मन में चलनेवाले वैचारिक मानसिक द्वन्द्व के क्षण, रेखा से मिलने पर उसके स्नेहार्द्र और उष्मापूर्ण व्यवहार से प्रभावित गौरा के मनोमंथन के क्षण, भुवन जब लॉरेन्स की कविता प्रेषित करता है वे क्षण भी मनोवैज्ञानिक क्षणों में परिगणित किये जा सकते हैं ।

चन्द्रमाधव के संदर्भ में भुवन और रेखा के बीच बढ़ती निकटता के क्षण, गौरा को पत्र लिखते समय उसके मन में चल रहे द्वन्द्वपूर्ण क्षण, भुवन और रेखा के पहाड़ों पर जाने के कार्यक्रम से उत्पन्न व्यथापूर्ण क्षण, रेखा को तलाक मिला उसके बाद के कुछ आशा और उम्मीद से भरे हुए क्षण, रेखा और भुवन पर अपनी शठता और धूर्तता प्रकट हो जाने पर उन दोनों से कट जाने का, दु:ख पूर्ण क्षण जैसे क्षणों को मनोवैज्ञानिक क्षणों के अंतर्गत रख सकते हैं ।

३:११:००

भगवतीचरण वर्मा कृत 'रेखा' उपन्यास में भी अनेक ऐसे क्षण प्राप्त होते हैं जिनको हम मनोवैज्ञानिक क्षणों के अंतर्गत रख सकते हैं । इस उपन्यास की रेखा का चरित्र मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अत्यन्त जटिल है । वह एक बौद्धिक एवं बुद्धिवादी महिला है । उसके माता पिता के वहाँ का परिवेश भी पूर्णतया बौद्धिक रहा है । फलत: अपनी युवावस्था में वय सुलभ भावुकता के कारण वह अपने से बड़ी उम्र के, प्रौढ़ वय के प्रोफेसर प्रभाशंकर से विवाह कर लेती है । प्रभाशंकर से विवाह करने के उपरान्त उसके भीतर का 'इद' (Id) उसे कई बार नवयुवकों की ओर प्रेरित करता है, परन्तु उसके नैतिक अहम् (Super ego) से परिचालित उसका विवेक प्रत्येक बार उसे बरजता है । उसकी नैतिकता में प्रथम छेद तब हो जाता है जब प्रभाशंकर की पूर्व प्रेमिका से उत्पन्न रमाशंकर से उसकी भेंट होती है । रमाशंकर इलहाबाद से दिल्ली आया है । उसकी माँ ने उसे प्रोफेसर प्रभाशंकर का अता-पता दिया है । उसे विदेश जाना था । अत: उससे सम्बद्ध विधि-विधानों की कार्यवाही पूरी करनी थी तथा उसे विदेश यात्रा हेतु कुछ शॉपिंग करनी थी । इन सब कार्यों में रेखा रमाशंकर की सहायता करती है । उसकी

सारी शॉपिंग करा देती है । वह अपने अचेतन मन में उस युवक को प्रेम करने लगती है । रमाशंकर में उसे प्रभाशंकर की युवावस्था दृष्टिगोचर होती है । उस समय उसकी तमाम चेष्टाएँ उसके भीतर के इद (Id) से परिचालित होती है । उसका अचेतन मन यह अनुभव करता है कि प्रभाशंकर का ही स्वस्थ और युवा शरीर उसके समीप उसकी बगल में बैठा है । और तब किसी अज्ञात प्रेरणा से उसका हाथ रमाशंकर के कंधे पर चला जाता है । वह रमाशंकर से कहती है - ''तुम कितने अच्छे और प्यारे लड़के हो । तुम खुब पढ़ो, बड़े आदमी बनो और जीवन में सफल हो ।''[२९] इस क्षण का बड़ा ही मनोवैज्ञानिक चित्रण लेखक ने किया है । यथा - ''उसे लगा कि उसका हाथ रमाशंकर के कंधे पर एक दबाव के साथ जड़ होता जा रहा है, और उसे लग रहा था कि उसकी बगल में बैठे हुए युवक के शरीर से ताजे यौवन की एक अजीब तरह की मादक सुगंध निकल रही है जिससे वह बेहोश होती जा रही है, और उसे लगा कि वह शरीर स्वत: उसकी ओर झुकता जा रहा है, गहन स्पर्श में, एकाएक झटके के साथ रेखा की चेतना लौट आयी ।''[३०]

रमाशंकर वाले प्रसंग के बाद रेखा यह महसूस करने लगती है कि अपनी भावुकता में लिये गये निर्णय के कारण उसने कितना कुछ गँवाया है । अत: उसका भाई जब विदेश से आता हे तब उसके मित्र सोमेश्वर की ओर वह आकृष्ट होती है । रेखा के अचेतन मन में 'इद और इगो' का संघर्ष शुरू हो जाता है । रेखा का 'इद' सोमेश्त्रर को भोगने के लिए उसे प्रेरित करता है तो उसका 'सुपर इगो' उसे बार-बार ताकीद करता है कि वह गलत रास्ते पर जा रही है, प्रोफे सर के साथ बेवफाई कर रही है । इस super ego के कारण ही रेखा सोमेश्वर को आगे से न मिलने का निर्णय करती है । परन्तु प्रोफेसर शंकर को युनिवर्सिटी पहुँचा कर जब रेखा वापस लौटने लगती है

तब अचानक उसकी कार सोमेश्वर की होटल की ओर चल पड़ती है । उसके भीतर का 'इगो' उसे बार-बार कहता है - ''अरे ! यह क्या कर रही हो तुम ? यह तुम कहाँ चल रही हो ? तुमने तो यह संकल्प कर लिया था कि तुम सोमेश्वर से न मिलोगी, न बात करोगी । तुमने उससे टेलीफोन पर बात भी नहीं की थी । यह कैसी कमजोरी ? इतनी जल्दी तुम भुल गई अपने संकल्प को ।''[३१] तभी उसके भीतर का 'इगो' का मानो उसे कहता है - ''झूठ । झूठ । झूठ । तुम यह क्यों स्वीकार नहीं करती कि तुम्हारे शरीर की भूख एकाएक जाग पड़ी है, और उस भूख को दबाना तुम्हारे वश में नहीं है । इस शरीर की भूख से विकल होकर तुम जा रही हो और झूठ बोलकर अपनी आत्मा को धोखा दे रही हो, लेकिन यह शरीर की भूख बड़ी खतरनाक है, इतना समझ लो । यह शरीर की भूख बुद्धि को नष्ट कर देती है, यह कटु और कठोर सत्य है । अब भी मौका है, तुम बच सकती हो, लौट चलो ।''[३२]

किन्तु रेखा का Id 'विस्थापन' का एक मार्ग ढूंढ ही लेता है । वह सोचती है कि उसे होटल में सोमेश्वर के पास एक बार अवश्य जाना चाहिए। उसे फटकारना चाहिए कि उसने अपने मित्र की बहन के साथ ऐसा करके उचित नहीं किया है और ऐसे सोचते हुए वह सोमेश्वर के पास जाती है । और वहाँ जाते ही तमाम नैतिकता, अनैतिकता की बातें भूलकर वह सोमेश्वर को प्रेम करने लगती है । इस पूरे प्रसंग में रेखा के मन में 'Id' और 'ego' को जो संघर्ष चलता है उन्हें हम मनोवैज्ञानिक क्षणों के अंतर्गत रख सकते हैं । इस उपन्यास में ऐसे अनेक स्थान आये हैं ।

३:१२:००

कमलेश्वर कृत 'डाक बंगला' उपन्यास आधुनिक मनुष्य के अकेलेपन और खोखलेपन को संवेदनशीलता के साथ उकेरता है । इस उपन्यास की

नायिका इरा एक अहमवादिनी नारी है । आधुनिक हिन्दी उपन्यास साहित्य में ऐसे कुछ चरित्र मिलते हैं, जो सब कुछ खोकर भी, सब कुछ देकर भी, व्यक्ति समाज एवं नियति द्वारा पूरी तरह से छले जाकर भी टूटते नहीं हैं। इरा ऐसी ही एक आधुनिक नारी है । जीवन में सार्थकता खोजने के प्रयास में तथा सही जीवनसाथी तलाशने में उसका जीवन अनेक बार बनता-बिगड़ता और उजड़ता है । उसके जीवन में पाँच पुरुष आते हैं - विमल, बतरा, डॉ. चन्द्रमोहन, मेजर सोलंकी और तिलक । तिलक इस उपन्यास का 'नेरेटर' है । वह कश्मीर की वादियों में इरा को मिलता है, जहाँ इरा अपनी कहानी उसे सुनाती है । मेजर सोलंकी तक की घटनाओं को इरा बताती है। बाद की घटनाओं को घटित होते हुए दिखाया गया है । विमल इरा का प्रथम प्रेमी है । दोनों नाटक के जीव थे । परन्तु जिन्दगी नाटक के सहारे नहीं चलती, उसे एक ठोस आर्थिक आधार चाहिए । फलत: इरा बतरा के यहाँ नौकरी करती है । बतरा एक चालू किस्म का चलतापुर्जा और हरफनमौला किस्म का आदमी है । विमल इरा और बतरा के सम्बन्धों को लेकर सशंकित रहता है और उसी में एक दिन इरा को छोड़कर कहीं चला जाता है । तब इरा को बतरा का ही अवलंब रहता है । शराब के नशे में बतरा बहुत ही भावुक हो जाता है । और आदमी की खुबसूरती को उसकी बेहोशी में देखने वाली इरा बतरा को समर्पित हो जाती है । बिना विवाह किये वह उसके साथ पत्नीवत रहती है । उसी में उसे गर्भ रहता है । इरा को शुरु से ही बच्चे की चाहना थी । इसके लिए लेखक ने 'शेमल के कोमल फूल' के प्रतीक को चुना है । परन्तु बतरा यह सब झंझट नहीं चाहता । वह इरा को गर्भ गिराने के लिए कहता है, परन्तु वह नहीं मानती । फलत: दवाई के नाम पर बतरा ऐसी गोलियाँ खिला देता है जिससे इरा का वह 'कोमल शेमल के फूल' वाला स्वप्न पूरा नहीं होता । वह बतरा से नफ़रत करने लगती है । भ्रमरवृत्ति वाले बतरा को अब इरा में कोई ज्यादा दिलचस्पी नहीं थी, तब बूढ़े डॉ. चन्द्रमोहन

का सहारा वह ग्रहण करती है । हमेशा युवान पुरुषों को चाहने वाली और उनकी ओर आकर्षित होने वाली इरा डॉ. चन्द्रमोहन को नकारती है । इरा के अचेतन मन में कामेच्छा की घोर अतृप्ति है । डॉक्टर के साथ विवाह के बाद अतृप्ति और उससे उत्पन्न अशांति और भी अधिक बढ़ जाती है । डॉ. चन्द्रमोहन के साथ की वैवाहिक स्थितियों का जो वर्णन है उसकी गणना हम मनोवैज्ञानिक क्षण के अंतर्गत कर सकते हैं । चन्द्रमोहन की आयु पचास वर्ष के ऊपर थी । इरा से जब वह कोई प्यार की बात करता था तो उसके मुँह के कोनों से सफेद झाग निकलता था । वह लिजलिजा और शक्तिहीन सूखा व्यक्ति था । डाक्टर के साथ रहते हुए इरा का वैवाहिक जीवन मानों साक्षात नरक हो जाता है । इरा की कामेच्छाएँ बड़ा भीषण रूप धारण करती है । किन्तु नपुंसक ऐसे डॉ. चन्द्रमोहन के सहवास में उसे अतृप्ति ही मिलती है । उसी अतृप्ति में वह छटपटाती रहती है । इरा के लिए यह अतृप्ति इसलिए और भी खतरनाक है कि उसे युवा पुरुषों का सहवास प्राप्त हो चुका है और उसके आनंद से वह अनभिज्ञ नहीं है । इरा की अतृप्ति के जो क्षण हैं उनकी गणना हम मनोवैज्ञानिक क्षण में कर सकते हैं । उपन्यास में एक स्थान पर इस अतृप्ति का वर्णन इस प्रकार किया गया है -

''जिस रात हम शिलोंग से शादी करके लौटे, उसी रात पहली बार डॉक्टर ने मेरी कमर में अपना काँपता हुआ हाथ डाला था । मुझे लगा जैसे कोई मरा हुआ साँप मेरी कमर में लिपट गया हो और जब पहली बार काँपते हुए उसने मुझे प्यार से चुमा तो मैं गिजगिजाहट से भर गई थी । जैसे मेढ़क पर मेरे होंठ पड़ गये हों । चारों तरफ से हताश होकर मैं अपने को मारने पर तैयार हो गई थी । एक इरा उसी दिन मर गई । एक इरा उसी दिन जिंदा दफन हो गयी - - - - वह मेरे पास लेटता तो उसकी टाँगे डर से काँपती रहती, वह सिर्फ मुझे परेशान करता था, मुझे अस्तव्यस्त करते भयातुर-सा

चिपका रहता था और झागदार मुँह से कहता था - अब जैसा तुम चाहो ।''[३३]

३:१३:००

'तीसरा आदमी' कमलेश्वर का एक मनोवैज्ञानिक उपन्यास है । उपन्यास का नायक नरेश अपनी पत्नी चित्रा के साथ इलहाबाद में रहता था । किन्तु उसका तबादला दिल्ली हो जाता है । दिल्ली जैसे महानगर में आर्थिक अभाव में तथा आवास की सुविधाओं के अभाव में नरेश-चित्रा को अपने दूर के रिश्तेदार ऐसे सुमन्त के साथ एक कमरे में रहना पड़ता है । इसे आधुनिक जीवन का एक अभिशाप ही समझना चाहिए कि आधुनिक नारी के जीवन में तीसरे व्यक्ति का प्रवेश किसी-न-किसी रूप में हो जाता है। नौकरीशुदा महिलाओं के जीवन में यह तीसरा पुरुष कोई सहकार्यकर बोस होता है । यहाँ पर सुमन्त की स्थिति उस तीसरे आदमी की-सी है । नगरीय जीवन में मध्यवर्गीय व्यक्ति को कोई भी चीज संपूर्ण रूप में नहीं उपलब्ध होती । कहीं-न-कहीं, कुछ-न-कुछ उसे किसी-न-किसी के साथ बाँटना पड़ता है । यहाँ प्रस्तुत उपन्यास में नरेश चित्रा को कमरा बाँटना पडता है। नरेश-चित्रा सुमन्त के साथ एक कमरे में रहने के लिए बाध्य है और यही बाध्यता उनके जीवन का अभिशाप बन जाती है । नरेश और सुमन्त के 'ऑफिस अवर्स' एक से होते तो कदाचित यह अभिशाप कुछ कमतर सिद्ध होता । परन्तु नरेश का 'Job' 'टुरिंग' प्रकार का है और कई बार उसे महीने में सात-आठ दिन दिल्ली से दूर जाना पड़ता है । उन दिनों में नरेश सुमन्त और चित्रा को लेकर तरह-तरह की शंका-कुशंकाएँ करता रहता है । सुमन्त को देखकर नरेश को ऐसा लगता है मानों सुमन्त की छाया हर समय उसके आगे-आगे चलती है । उसका बड़ा ही मनोवैज्ञानिक चित्रण कमलेश्वर ने किया है । एक स्थान पर नरेश कहता है - ''और लगता है कि मैं उस छाया

का सिर्फ पीछा करता हूँ । जो वह कहती है वही मैं करता जाता हूँ । मुझसे पहले वह घर में दाखिल होती है । मुझसे पहले वह चित्रा को देखती है जो कुछ मैं करना चाहता हूँ । उससे पहले वह छाया वही सब कर लेती है ।'' चित्रा के आसपास मंडराती सुमन्त की यह छाया नरेश को पागल-सा बना देती है । उसके ही शब्दों में - ''रात में ..... जब मैं चित्रा को अपनी बाहों में लेता तो एक अजनबी गंध फू टती थी । वह छाया मँडराती हुई कहीं से आती थी और मुझसे पहले उसकी बाँहों को जकड़ लेती थी....जब मैं उसकी बाँहों पर हाथ रखता तो वहाँ दो हाथ पहले से मौजूद होते थे । वह छाया मुझे चित्रा के पास पहुँचने से रोकती थी...चित्रा की आँखों में जब मैं झाँकता था तो वहाँ चार आँखें झांकती होती थीं.... चार बाहें उसे कस रही होती थीं, चार होठ उसे प्यार कर रहे होते थे ।''[३५] यहाँ नरेश के अचेतन मन की जिन विडम्बनाओं का चित्रण हुआ है उनमें मनोवैज्ञानिक क्षणों का निरूपण बखूबी हुआ है ।

आकाशवाणी के काम से नरेश कुछ दिनों के लिए बाहर गया है । उसके वापिस आने पर चित्रा और सुमन्त बार-बार उस दिल्ली वाले प्रसंग की चर्चा करते है जिसमें चित्रा रात के समय में बिल्ली को देखकर डर गयी थी । इस प्रसंग का बार-बार उल्लेख करके ये दोनों नरेश पर यह जताना चाहते हैं कि जब नरेश दिल्ली से बाहर गया था तब सुमन्त कमरे में नहीं अपितु बाहर सोता था । इस क्षण को भी हम मनोवैज्ञानिक क्षण के अंतर्गत रख सकते हैं ।

३:१४:००

'अंधेरे बन्द कमरे' नई पीढ़ी के अग्रणी कथाकार एवं नाटककार मोहन राकेश का एक ऐसा मनोवैज्ञानिक उपन्यास है जो आधुनिक नगरीय

जीवन के विभिन्न आयामों को उद्घाटित करता है । प्रस्तुत उपन्यास आधुनिक भावबोध को भलीभाँति रूपायित करता है । इस उपन्यास में पहली बार स्त्री-पुरुष के नये संबंधों और तनावों को खुली आँखों से देखने की भरपूर कोशिश हुई है । इसमें सांस्कृतिक विघटन के बदलते बाह्य परिवेश में स्त्री-पुरुष की मानसिकता की ढँकी छिपी रेखाएँ पहली बार उजागर हुई हैं । न इसमें इलाचन्द्र जोशी वाला सतही मनोविश्लेषण है और न जैनेन्द्रवाली थोथी कुँठाएँ । मानसिक उलझन और तनाव तथा आंतरिक कशमकश ने जिन्दगी में 'वेक्युम' पैदा करने के साथ नए आयाम खो दिये थे । वे सब जीवन स्पन्दन के रूप में 'अंधेरे बन्द कमरे में' पहली बार प्रकट हुए है ।''[३६]

यह 'अंधेरे बन्द कमरे' की नीलिमा और हरबंस के दाम्पत्य जीवन का प्रतीक है । इसमें हरबंस और नीलिमा के दाम्पत्य जीवन में किस प्रकार दरारें पड़ती हैं उसका बड़ा ही कलात्मक और निरपेक्ष चित्रण हुआ है । आज के सुशिक्षित स्त्री-पुरुष की मुख्य समस्या है उनके अहम की समस्या । हरबंस और नीलिमा का प्रेमविवाह था । आधुनिक शिक्षा, पश्चिमी सभ्यता तथा स्त्री स्वतंत्रता के ख्यालों ने जहाँ स्त्री को एक अनोखा व्यक्तित्व प्रदान किया है, वहाँ कहीं-कहीं इसके कारण वह अपने घर परिवार से विलग भी हुई है । स्त्री का स्वतंत्र व्यक्तित्व पुरुष को लुभाता तो है परन्तु वह विवाह के पूर्व 'कोर्टशीप' के दिनों में, विवाह के बाद उसका यही व्यक्तित्व पुरुष को खलने लगता है । हरबंस नीलिमा जैसी आधुनिका के स्वतन्त्र व्यक्तित्व से मोहित होकर उससे विवाह कर लेता है। शूरु-शूरु में उस पर 'अल्ट्रा-मोडर्ननेस' का भूत सवार होता है और उसी के तहत वह अपनी सुन्दर, आकर्षक स्मार्ट मॉडर्न पत्नी को मानो प्रदर्शन की वस्तु बना देता है । वह नीलिमा को पार्टियों और कॉफी हाउसों में ले जाता है । नीलिमा के माध्यम से अपने अहम को तुष्ट एवं पोषित करने हेतु वह उसे पैन्टिंग और नृत्य जैसी

कलाओं की ओर प्रेरित और प्रोत्साहित करता है। परन्तु जैसे ही नीलिमा अपनी इन खूबियों के कारण लोगों में पहचान बनाने लगती है वह हरबंस की पत्नी के रूप में नहीं प्रत्युत नीलिमा के रूप में जानी जाती है, बल्कि लोग हरबंस को नीलिमा के पति के रूप में जानने लगते हैं, तब हरबंस के भीतर बैठे हुए पुरुष के अहम को ठेस पहुँचती है और नीलिमा के साथ वह असहयोग करने लगता है । इन कारणों से हरबंस और नीलिमा का दाम्पत्य जीवन खण्डित होने लगता है । वे एक-दूसरे से उबने और चिढने लगते हैं। ऐसे में हरबंस नीलिमा को छोड़कर विदेश भी भाग जाता है । इन स्थितियों में नीलिमा जब हरबंस के विषय में सोचती है तो उसकी उस सोच के क्षणों को हम मनोवैज्ञानिक क्षणों के अंतर्गत रख सकते हैं । नीलिमा की प्रकृति हावी होने की है । वह वाद-विवाद करती है । दूसरी ओर उसकी बहन शुक्ला की प्रकृति ‘submissive’ है । वह हरबंस की अर्थात् अपने बहनोई की हर बात मान लेती है । अत: हरबंस का अचेतन मन शुक्ला को भीतर ही भीतर चाहने लगता है । शुक्ला के जन्म दिन पर हरबंस शुभकामनाओं वाला एक पत्र प्रेषित करता है, जबकि दूसरी ओर नीलिमा का जन्मदिन उसे याद नहीं रहता । इस प्रसंग को लेकर नीलिमा के मन में जो द्वन्द्व उठता है उन क्षणों को भी हम मनोवैज्ञानिक क्षणों के अंतर्गत रख सकते हैं । नीलिमा के नृत्य प्रदर्शन में हरबंस ऊपर-ऊपर से प्रयत्न करता हुआ दृष्टिगोचर होता है, परन्तु तहेदिल से नृत्य प्रदर्शन को सफल बनाने का प्रयत्न वह नहीं करता । क्योंकि हरबंस सोचता है कि यदि नीलिमा का नृत्य प्रदर्शन सफल रहा तो वह सोसायटी में उससे और भी ऊँची हो जाएगी और उसका मानसिक कद छोटा हो जाएगा । फ लत: नीलिमा का नृत्य प्रदर्शन असफ ल रहता है । इस घटना के बाद की नीलिमा की आत्म प्रताडता में हमें मनोवैज्ञानिक क्षणों का निरूपण मिलता है । नीलिमा जब विदेश प्रवास करती है तब एक विदेशी कलाकार, उबानू के साथ होटल के एक ही कमरे में ठहरती है ।

हरबंस की ओर से वह निराश हो चुकी है । विदेश के स्वतन्त्र वातावरण में एक विदेशी कलाकार के साथ वह ठहरी हुई है परन्तु ऐसी स्थिति में भी वह मर्यादा का उल्लंघन नहीं करती । यह बाह्यत: होता है परंतु उस समय उसके मन में उबानू को लेकर जो आंतरिक द्वन्द्व चलता है उन एकान्त क्षणों को हम मनोवैज्ञानिक क्षणों के रूप में पहचान सकते हैं । नीलिमा सोचती है कि स्त्री पुरुष में केवल शारीरिक संबंध ही नहीं होते, उनके बीच मैत्रीपूर्ण संबंध भी हो सकते हैं । स्त्री को केवल वासनापूर्ति का एक साधन माना जाय, यह उसके स्वाभिमान को स्वीकार्य नहीं है । नीलिमा का इस प्रकार का चिन्तन ही उसे उबानू की ओर जाने से रोकता है । यह समूचा प्रसंग मनोवैज्ञानिक क्षणों को निरूपित करनेवाला प्रसंग है ।

३:१५:००

राजकमल चौधरी का बहुचर्चित उपन्यास 'मछली मरी हुई' मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि वाला उपन्यास है । प्रस्तुत उपन्यास स्त्री-स्त्री समलैंगिकता (Lisbianisam) तथा अन्य कई यौन समस्याओं पर आधारित उपन्यास है। प्रस्तुत उपन्यास का नायक निर्मल पदमावत मानसिक नपुंसकता का शिकार है । इसके साथ ही साथ प्रिया, शीरिन, शीरिन की बडी बहन आदि नारी पात्र हैं; जो (Lisbianisam) की प्रवृत्ति में रत है । अत: प्रस्तुत उपन्यास में भी ऐसे कई स्थान मिलते हैं, जिनकी गणना मनोवैज्ञानिक क्षणों के अंतर्गत कर सकते हैं ।

प्रस्तुत उपन्यास का नायक निर्मल पदमावत है । उसके पिता बचपन में ही काल-कवलित हो गए थे । माता घर-बार बेचकर एक ट्रक ड्राईवर के साथ भाग जाती है । आठ-दस वर्ष का शिशु निर्मल अनाथ ही नहीं होता अपितु बेघर हो जाता है । माता के इस कुकृत्य के कारण उसके अन्तर्मन में स्त्री जाति के प्रति एक घृणा का भाव पैदा हो जाता है। दर-दर की ठोकरें

खाते हुए, देश-विदेश की यात्रा करते हुए एक दिन वह बहुत बड़ा उद्योगपति हो जाता है ओर कलकत्ते में 'कल्याणी मेन्शन' नाम के एक 'स्काय स्क्रैपर' का निर्माण करवाता है । वह बचपन में बेघर हो गया था । बेघर होने की इस भावना के कारण ही वह ऐसी गगनचुंबी ईमारत बनवाता है ।

'कल्याणी मेन्शन' नाम कल्याणी पर से दिया गया है । यह कल्याणी उसे यूरोप में मिली थी । यूरोप में विचित्र स्थितियों के बीच निर्मल ने कल्याणी की सहायता की थी । कल्याणी यूरोप पढ़ने गयी थी, परन्तु हिप्पियों और बिटल्सों के बीच वह भयंकर रूप से ड्रग-ऐडिटर हो जाती है । कल्याणी अनिंद्य सुंदरी थी । नशे में उसकी खूबसूरती और भी गज़ब ढाती थी । अत: काल-गर्ल के रूप में वह धनी-सम्पन्न परिवारों के पथभ्रष्ट मन चले युवकों को फाँसती थी । ऐसे में पैसों के लिए एक हब्सी उसके पीछे पड़ा हुआ था । तब अपनी सारी जमापूंजी कल्याणी को देकर निर्मल ने उसे हब्शी के चुंगुल से मुक्त किया था । इसके बदले में कल्याणी निर्मल को समर्पित होना चाहती है । वह सोचती है निर्मल मेरे देश का है, मुझ पर टूट नहीं पडेगा । मेरे घाँवों को सहानुभूति का मरहम लगायेगा । अत: वह निर्मल के हॉटल पर जाती है । निर्मल और कल्याणी रतिक्रिया की तैयारी ही कर रहे थे कि अचानक निर्मल के हाथों पर्दा हट जाता है और उसका ध्यान अचानक कमरे में स्थित एक हाड पिंजर (skeletone) पर पड़ता है । फ लत: उसकी सारी उत्तेजना समाप्त हो जाती है । वह पहाड़-सा आदमी एकदम बर्फ-सा हो जाता है । वस्तुत: अचानक हाडपिंजर देख लेने से ऐसा हुआ था । काम-मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि कई बार ऐसी अप्रत्याशित आघातजनक घटनाओं से पुरुष के यौनतंत्र पर असर पडता है, परन्तु उस समय स्त्री यदि सहानुभूति से काम ले, प्रेम से काम ले तो पुरुष में पुन: कामावेग प्रकट हो सकता है । परन्तु ऐसा कार्य तो पत्नी या प्रियतमा कर सकती है । कल्याणी

न पत्नी थी, न प्रियतमा । वह तो दिल का सौदा करनेवाली एक रूप-सी कालगर्ल थी । वह कठोर शब्दों में निर्मल के नपुंसकत्व का अपमान करती है । उसके ही शब्दों में - ''तुम यही आदमी हो ? इतने से आदमी हो ? बस....इसी के लिए....इतने ही के लिए मेरे पास आये थे ?..... फिर कभी इधर नहीं आना निर्मल । तुम आदमी नहीं हो नरक के कीड़े हो...मत आना कभी ।''[३७]

जैसा कि ऊपर निर्दिष्ट किया गया है, कल्याणी यदि सब्र और सहानुभूति से काम लेती तो निर्मल पर कोई बुरी प्रतिक्रिया न होती, परन्तु कल्याणी की इस भर्त्सना के कारण निर्मल कुंठाओं का शिकार हो जाता है । और वह मनोवैज्ञानिक दृष्टया नपुंसक (Impotant) हो जाता है । निर्मल को इस कुंठा से मुक्ति कल्याणी से ही मिल सकती थी, किन्तु दुबारा वह उसके पास जाने का साहस नहीं जुटा पाया और जब आर्थिक स्टेटस आने पर उस साहस को जुटाने की स्थिति में आता है तब तक कल्याणी डॉ. रघुवंश से शादी कर लेती है । डॉ. रघुवंश से उसे एक बच्ची भी होती है । बच्ची की उम्र जब छ:सात साल की होती है तब कल्याणी का निधन हो जाता है और अपनी छोटी लड़की प्रिया को छोडकर वह सदा-सदा के लिए कलकत्ता की 'पार्क स्ट्रीट सिमेट्री' में शांति की नींद सो जाती है ।

प्रस्तुत अध्याय में निर्मल पदमावत की कहानी के समानान्तर शीरीं महेता और प्रिया की कहानी चलती है । प्रिया कल्याणी की लड़की है । शीरीं मेहता मॉडर्न सोसायटियों और पार्टियों में घूमनेवाली एक लिसबीयन औरत है । शीरीं मेहता शुरू से ऐसी नहीं थी, परन्तु जब वह सात-आठ साल की थी तब उसकी माँ बच्चे को जन्म देते हुए प्रसव वेदना में गुजर गयी थी । बच्चा भी मर गया, माँ भी मर गई । शीरीं की जिम्मेदारी उसकी

बड़ी बहन के ऊपर आ गई । बड़ी बहन ने शीरीं के मन में पुरुष के प्रति भय और नफ़रत का भाव भर दिया । उसने ऐसा अपने स्वार्थ के लिए किया। अपनी कामेच्छा की पूर्ति के लिए । बाद में वह तो अपने प्रेमी के साथ चली गई । उसकी सोबत में शीरीं पूरी 'लिसबीयन' बन चुकी थी । उसके बाद शीरीं के जीवन में यदि ढंग का पुरुष आता तो उसकी यह काम विकृति दूर हो सकती थी । किन्तु किस्मत से मिला बूढ़ा विश्वजीत मेहता। काम-मनोवैज्ञानिक के अनुसार लिसबियन औरत को वही पुरुष सामान्य बना सकता है, जिसमें कामावेग कुछ अधिक ही हो, परन्तु शीरीं को ऐसा पुरुष नहीं मिलता । फलत: वह क्लबों, पार्टियों और होटलों में नये-नये शिकारों को ढूँढती रहती है । प्रिया उसका एक ऐसा ही शिकार है । लेखक ने इन दोनों के समलैंगिक सम्बन्धों का मनोवैज्ञानिक ढंग से चित्रण किया है ।

विश्वजीत मेहता डॉ. रघुवंश, निर्मल पद्मावत आदि कलकत्ते की ऊँची सोसायटी के लोग हैं । फलत: विश्वजीत मेहता और निर्मल पद्मावत में मैत्री स्थापित होती है । निर्मल एक सुदर्शन व्यक्तित्व का धनी है । उसका शारीरिक सौष्ठव भी लुभावना है । फलत: शीरीं मेहता उसकी तरफ आकर्षित होती है । किन्तु थोड़े ही समय में जान जाती है कि निर्मल नपुंसक व्यक्ति है । शीरीं यह बात प्रिया को भी कहती है ।

काम मनोविज्ञान के अनुसार असाधारण (abnormal) पुरुष कभी कुंठाओं से वशीभूत होकर नपुंसक हो जाता है । वह वास्तविकता या नैसर्गिक दृष्टि से नपुंसक नहीं होता । अत: किसी विशेष परिस्थिति में पड़कर उसका पुंसत्व फूट भी सकता है । कल्याणीने डॉ. रघुवंश को निर्मल के सम्बन्ध में भी बताया था । डॉ. रघुवंश अच्छी तरह से जानते हैं कि निर्मल की वह कमजोरी कल्याणी दूर कर सकती थी और अब उसे कोई दूर कर

सकता है तो वह है कल्याणी की पुत्री प्रिया जो कल्याणी की प्रतिमूर्ति-सी दिखती है ।

एक पार्टी में प्रिया निर्मल पद्मावत का गंदा मजाक बनाती है । उसका ईशारा उसके नपुंसकत्व की ओर था । आवेश में आकर निर्मल बौखला उठता है और प्रिया को अलग कक्ष में ले जाकर पशु की तरह उस पर टूट पड़ता है और एक बार नहीं, अनेक बार वह प्रिया पर सफल बलात्कार करता है । निर्मल का पुंसत्व लौट आता है । प्रिया भी पुरुष समागम के सही आनंद को पाकर साधारण (normal) हो जाती है । डॉ. रघुवंश को इस बात की प्रसन्नता है कि आखिर प्रिया ने कल्याणी के अधूरे कार्य को पूरा किया । इससे न केवल निर्मल की साधरणता लौट आई बल्कि प्रिया भी एक साधारण स्त्री बन सकी । साधारण हुए निर्मल पद्मावत ने व्यापार में घाटा खाया । पर किसी तरह 'कल्याणी मेन्शन' को बचा लिया । वह कल्याणी मेन्शन प्रिया को दे देता है । शीरीं विश्वजीत से अलग हो जाती है और शीरीं मेहता से शीरीं पद्मावत हो जाती है । अपने योग्य जीवनसाथी पाकर शीरीं पद्मावत भी अब एक साधारण स्त्री हो जाती है । उसकी समलैंगिकता दूर हो जाती है । प्रस्तुत उपन्यास में प्रारंभ में निर्मल पद्मावत बेघर हो जाता है और उसे आर्थिक संघर्षों से गुजरना पड़ता है । परन्तु बाद में उपन्यास में पात्रों की कोई आर्थिक, सामाजिक, पारिवारिक समस्या नहीं है । सभी ऊँची सोसायटी के है, स्वतंत्र और उन्मुक्त । वहाँ सारी समस्याएँ मनोवैज्ञानिक हैं । निर्मल पद्मावत की समस्या नपुंसकता की थी तो शीरीं मेहता और प्रिया की समस्या समलैंगिकता की समस्या थी । ऐसा प्रतीत होता हे कि मानो लेखक ने इन मनोवैज्ञानिक समस्याओं के समाधान के लिए ही उपन्यास की रचना की है । वस्तुत: यह उपन्यास एक सामान्य बाजारू किस्म का 'Porniograithic Novel' बन कर रह जाता परन्तु उसका शिल्प उसे एक साहित्यिक गरिमा

प्रदान करता है । डॉ. धनराज मानधाने इस उपन्यास के संदर्भ में लिखते हैं - ''कथा को प्रस्तुत करने का चौधरीजी का अपना एक ढंग है । उपन्यास को पढ़ते समय हम 'कोनार्ड' के उपन्यासों का-सा मजा लुटते हैं । कथा कहीं भी A to Z नहीं चलती । कथा के धागे डोरों में ऐसा गुंफन है कि जागृत मस्तिष्क के बिना समझना मुश्किल हो जाता है । निर्मल पद्मावत, कल्याणी, शीरीं, प्रिया, डॉ. रघुवंश, विश्वजीत मेहता, प्रभाशचन्द्र नियोगी आदि पात्रों के बारे में एक साथ जाना नहीं जा सकता । एक पात्र के विषय में सबकुछ जानने के लिए पाठक को उपन्यास बार-बार पढ़ना पडता है । यही कसौटी राजकमल चौधरी को आधुनिक उपन्यासकारों की कोटि में ला बिठाती है ।''[३८]

प्रस्तुत उपन्यास में निर्मल पद्मावत की माँ जब भाग जाती है उसके बाद के निर्मल के जद्दोजहेद के क्षण, कल्याणी निर्मल की नपुंसकता का मजाक उड़ाती है उसके बाद के क्षण, प्रिया और शीरीं के अंतरंग क्षण, कामचेतना में शीरीं जो तड़पती है वे क्षण तथा डॉ. रघुवंश, कल्याणी और प्रिया के संबंध में जो सोचते हैं उन क्षणों की परिगणना मनोवैज्ञानिक क्षणों के अंतर्गत कर सकते हैं ।

३:१६:००

'पचपन खंभे लाल दीवारें' उषा प्रियंवदा का एक बहुचर्चित उपन्यास है । उसमें आधुनिक सुशिक्षित नारी की समस्या को निरूपित किया गया है। सुषमा इस उपन्यास की नायिका है । अपने परिवार की वह सबसे बड़ी लड़की है । उसके भाई-बहन छोटे है । पिता निवृत, अपाहिज और बेरोजगार हैं । सुषमा के मन में भी दाम्पत्य जीवन के अनेक स्वप्न तैर रहे हैं । कुछ समय के लिए सपनों की उस दुनिया में वह खो भी जाती है । नील नामक एक युवक से उसे प्रेम होता है और वह भी दूसरी लडकियों की भाँति

रोमांस की दुनिया में खो जाती है, परन्तु कुछ ही समय में वास्तविकता सामने आती है । वह एक कॉलेज में व्याख्याता है और गर्ल्स हॉस्टेल की वॉर्डन भी है। नील और उसके सम्बन्धों को लेकर कुछ ही दिनों में कॉलेज के परिसर में तरह तरह की बातें होने लगती हैं, परिणामस्वरूप एक दिन कॉलेज की आचार्य उसे साफ-साफ कह देती हैं कि उसके सामने तीन विकल्प है - नील को छोड़ दे, नील से विवाह करके हॉस्टेल से अलग रहे या फिर कॉलेज से इस्तीफा दे दे । सुष्मा एक मध्यवर्गीय परिवार की लड़की है । अपने परिवार का पूरा उत्तरदायित्व उसके ऊपर है । ऐसी स्थिति में वह नील को छोड़ने का और सदा-सदा के लिए अविवाहिता रहने का फैंसला कर देती है । इस प्रकार सुषमा अपनी परिवारबद्धता में अपनी वैयक्तिक भावनाओं और प्रेम को बलि चढ़ा देती है । उन दिनों में उसकी एक सहेली मीनाक्षी का विवाह होने वाला था । मीनाक्षी के ऊपर सुषमा की भाँति किसी प्रकार का उत्तरदायित्व नहीं था । उसका घर परिवार सम्पन्न था । अत: वह नौकरी से त्यागपत्र दे देती है । उस समय सुषमा मीनाक्षी से कहती है - ''पैंतालीस साल की आयु में मैं भी एक कुत्ता या बिल्ली पाल लूँगी....उसे सिने से लगा रखूँगी....आज से सोलह साल बाद शायद तुम अपनी बेटी को लेकर इसी कॉलेज में आओ, तब भी तुम मुझे यहीं पाओगी । कॉलेज के इन पचपन खंभों की तरह स्थिर, अचल ।''[३१]

उपर्युक्त उदाहरण में सुषमा के जीवन के मनोवैज्ञानिक क्षणों का बड़ा ही सटिक वर्णन हुआ है । कुत्ता या बिल्ली को पालने की बात वह इसन्लिए करती है कि प्राय: अविवाहित महिलाएँ अपनी प्रौढ़ावस्था में अकेलेपन के संत्रास से निबटने के लिए कुत्ता या बिल्ली पाल लेते हैं । वस्तुत: यहाँ सुषमा के नैराश्यने ही शब्द रूप धारण कर दिया है । वह पचपन खंभों वाली कॉलेज ही मानो उसकी नियति (destiny) है । जीवन में बहुत कुछ बदल

जाएगा । उसके साथ-संगी सब आगे निकल जायेंगे । भाई बहनों के अपने अपने संसार होंगे । जीवन में यदि बदलाव नहीं आयेगा, तो केवल सुषमा के जीवन में । पचपन खंभों की तरह उसके जीवन के खंभे भी निश्चित ही हैं । कॉलेज के बिल्डींग के रंग की तरह उसके जीवन का भी एक ही रंग होगा - कमाना और कमाकर पैसे घर भेजना । सुष्मा की इस निराश अवस्था का वर्णन जिन शब्दों में हुआ है, उनको भी हम मनोवैज्ञानिक क्षण के अंतर्गत रख सकते हैं । यथा - ''जीवन की भाग-दौड़ और आजीविका के प्रश्नों में चुपचाप विलीन हो गये दो वर्ष और अब तो उसके चारों ओर दीवारें खींच गई थी, दायित्व की, कुण्ठाओं की, अपने पद की गरिमा और परिवार की । ....कभी कभी उसका मन न जाने क्यों डूबने लगता । अपने परिवार का सारा बोझ, अपने ऊपर लिए सुषमा काँपने लगती तब वह चाह उठती कि दो बाहें उसे भी सहारा देने को हों । इस नीरवता में कुछ अस्फुट शब्द उसे भी संबोधित करें ।''[४०]

३:१७:००

उषा प्रियंवदाजी का दूसरा उपन्यास 'रूकोगी नहीं राधिका ?' मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है । जहाँ प्रथम उपन्यास में उन्होंने मध्यवर्गीय जीवन को रेखांकित किया था, वहाँ प्रस्तुत अध्याय में उन्होंने उच्चवर्ग की मनावैज्ञानिक समस्याओं को निरूपित किया है । प्रस्तुत उपन्यास की नायिका राधिका है । प्रथमत: राधिका में पितृबद्धत्व ग्रंथि (Father fixation) मिलती है, परन्तु प्रौढ़ावस्था में जब उसके पिता विद्या नामक अपनी एक सहकार्यकर (colleague) से विवाह कर लेते हैं तब प्रतिक्रिया के कारण राधिका में इलेक्ट्रा कोम्पलेक्स पैदा होती है । फलत: अपने पिता को आघात देने के लिए वह हर काम उनकी इच्छा के विपरीत करती है। जब

उसके पिता विद्या से विवाह कर लेते है, तब एक तरफ तो वह अपने पिता से बहुत नाराज होती है, परन्तु फिर भी वह पिता के साथ अधिक से अधिक समय 'स्टडी' में बिताती है । इसका कारण यह नहीं है कि वह पिता के काम में हाथ बटाना चाहती है या उनका काम हल्का करना चाहती है । वस्तुत: उस समय उसका अचेतन मन बराबर यह सोचता रहता है कि वह जितने अधिक समय तक पिता के साथ काम करेगी उतना अधिक समय उधर विद्या को मानसिक त्रास देने में उसे आंतरिक प्रसन्नता होती है ।[४१]

विद्या नींद की गोलियाँ खा लेती है । राधिका विदेशी पत्रकार पिटरसन से विवाह करके उसके साथ विदेश भाग जाती है । परन्तु उसका यह विवाह भी असफल रहता है और वह पुन: लौट आती है । स्वदेशगमन के बाद राधिका अक्षय नामक एक व्यक्ति के प्रति झुकती है । वह जीवन में सुरक्षा और स्थायित्व चाहती है । अत: उसकी अनुभवी बुद्धि को अक्षय अधिक उपयुक्त जान पड़ता है । परन्तु अक्षय जहाँ एक तरफ राधिका के सम्मोहन पूर्ण व्यक्तित्व से आकृष्ट है, वहाँ दूसरी तरफ राधिका की स्वच्छंदी प्रवृत्तियों के कारण उसके चरित्र के प्रति शंकाशील भी है । अत: कलकत्ता जाकर वह राधिका को एक तरफ से भुला देता है । राधिका का एक मित्र है - मनीश । विदेशयात्रा के दौरान उससे उसका परिचय हुआ था । परन्तु उसका व्यक्तित्व 'play boy' टाइप का है । अत: स्वदेश आने पर जब वह राधिका के सामने खजूराहो जाने का प्रस्ताव रखता है, तब पहले वह उसे मना कर देती है । परन्तु बाद में जब उसके पिता उसके सामने प्रस्ताव रखते हैं कि वह अब उनके साथ रह सकती है तब वह कदाचित अपने पिता को दूसरा मानसिक आघात देने के लिए मनीश के साथ खजूराहो जाने का फैंसला कर लेती है यथा - ''नहीं पापा मैं जाना चाहती हूँ । मनीश.....मेरे एक बंधु.....वह बात बीच में छोड़ रूक गई ।''[४२] राधिका के मन की यह जो स्थिति है, ये

जो क्षण हैं उनको हम मनोवैज्ञानिक क्षणों के अंतर्गत परिगणित कर सकते हैं ।

३:१८:००

'सूरजमुखी अंधेरे के' कृष्णा सोबती का उपन्यास है । इसमें लेखिका ने औरत के ठंडेपन (frigidity) की समस्या को मनोवैज्ञानिक ढंग से निरूपित किया है । प्रस्तुत उपन्यास की नायिका रक्तिका है । रक्तिका में सेक्स के प्रति आकर्षण है, मोह है और उसके अनुसार वह व्यवहार भी करती है । परन्तु जैसे ही वह किसी पुरुष से जातीय संबंध स्थापित करना चाहती है, वह ऐसा नहीं कर सकती । उस समय वह 'जालिम ठंडेपन' का शिकार हो जाती है और उसके इस व्यवहार से न केवल पुरुष तड़पता रह जाता है, वह स्वयं भी तड़पती रहती है । रक्तिका की इस मानसिक अवस्था का विश्लेषण करते हुए डॉ. पारूकान्त देसाई ने लिखा है - "महाभारत की कुंती और मादरी की समस्या यह थी कि पांडु की शारीरिक स्थिति के कारण वे उनसे जातीय संपर्क नहीं कर पाती थी । यहाँ रक्तिका की समस्या यह है कि वह पुरुष के प्रति आकृष्ट तो होती है और उसे सर्वांगीण रूप से प्राप्त भी करना चाहती है, परन्तु एन मौके पर वह उत्फुल्लित कलिका-सी रक्तिका यकायक छुई-मुई की तरह सिकुड़ और बुझ जाती है । रक्तिका या रत्ती एक अतीव सुंदरी है । उसमें एक अजब का आकर्षण है । हर पुरुष पतंगे की तरह उसकी तरफ खींच आता है, परन्तु अंतिम क्षणों में उसके ठण्डेपन का अनुभव होने पर उनका मोहभंग होता है और वे उसके विषय में सोचते हैं कि क्या यह औरत भी है या नहीं ?"[४३]

वस्तुतः रक्तिका की यह जो मनोवैज्ञानिक स्थिति है उसके लिए उसके जीवन की एक शैशवकालीन घटना उत्तरदायी है । जब वह सात-आठ

साल की छोटी सी बालिका थी तब एक सेक्समेनियाक व्यक्ति ने उस पर बलात्कार किया था । बलात्कार की यह घटना रक्तिका के मनोमस्तिष्क पर ऐसे छा जाती है कि वह जातीय सहवास के क्षणों में बिल्कुल असाधारण (abnormal) हो जाती है और उसके भीतर का सारा मोहाकर्षण मानो समाप्त हो जाता है । रक्तिका की यह frigidity नैसर्गिक नहीं है । एक विशेष परिस्थिति के कारण ऐसा हुआ है । ठीक इसी बिन्दु पर पाण्डेच बेचेन शर्मा उग्र के उपन्यास 'बुधवा की बेटी' की रधिया से रक्तिका अलग पड़ती है । रधिया पर भी गाँव का एक मनचला युवक बलात्कार करता है । रधिया भी रक्तिका की भाँति अत्यन्त सुन्दर है और लोग सहज ही उसके प्रति आकर्षित होते हैं । परन्तु इस घटना के कारण रधिया sadist हो जाती है। वह पुरुषों को अपने मोहजाल में फँसाती है और फिर उनको तड़पता हुआ छोड़ देती है। उस क्रिया में रधिया को मानसिक परितोष मिलता है । रक्तिका के साथ ऐसा नहीं है । रक्तिका तो पुरुष सहवास चाहती है । इसके लिए उसके मन में उत्साह भी होता है । परन्तु ऐन मौके पर वह चुक जाती है । रक्तिका स्वयं भी इस आग में जलती है । यही फर्क है उन दोनों में। रक्तिका के जीवन में कई प्रेमी आते हैं । हर बार यही होता है, लोग उसको वीच, चुड़ैल, डाकिन और न जाने क्या-क्या कहते हैं । जब जब ऐसा होता है रक्तिका गहरे दर्द और मनोमंथन से गुजरती है । वह अपनी इस स्थिति को समझ नहीं पाती । उसके मन में भावनाओं का एक तूफान सा उठता है । वह रात-रात भर रेत पर पड़ी मछली की तरह तड़पती रहती है । रक्तिका के जीवन के इन क्षणों को हम मनोवैज्ञानिक क्षण कह सकते हैं ।

३:१९:००

'आपका बंटी' मन्नू भंडारीजी का एक बहुचर्चित मनोवैज्ञानिक उपन्यास है । प्राय: आलोचकों ने इसे शिशु-मनोविज्ञान का उपन्यास कहा है, किन्तु

बंटी के संदर्भ में वह जितना शिशु-मनोविज्ञान का उपन्यास है, अजय ओर शकुन के संदर्भ में वह युवा एवं वयस्क तथा शिक्षित लोगों के मनोविज्ञान का भी उपन्यास है । इधर शिक्षित एवं बुद्धिजीवी वर्ग में एक महारोग फैला है, जिसका नाम है 'इगो' । इसका अर्थ यह कतई नहीं है कि पहले के लोगो में 'इगो प्रोब्लेम' नहीं था, किंतु इधर के लोगों में, विशेषत: शिक्षित लोगों में इसका प्रमाण बहुत ही अधिक है । 'आपका बंटी' अजय और शकुन के अहम की टकराहट में एक निर्दोष, निरीह बच्चा कैसे बलि का बकरा बनता है, उसको संवेदनापूर्ण ढंग से व्यक्त करनेवाला उपन्यास है । अजय और शकुन दोनों एक दूसरे को दिखा देना चाहते हैं । किन्तु ''इस दिखा देने के चक्कर में'' मारा जाता हे बेचारा बंटी ।

उपन्यास की कुल कथा इतनी है कि अजय और शकुन में वैचारिक मतभेद बढ़ता जाता है । पहले वे अलग रहते हैं । वैवाहिक जीवन के प्रारंभिक दौर के परिपाक रूप उनके एक बच्चा है बंटी । अलग होने पर बंटी शकुन के साथ रहता है । अजय कभी-कभार बंटी को आकर मिल जाता है, उसे घुमाने ले जाता है, उसे खिलौने और चोकलेट देता है। परन्तु बाद में अजय और शकुन का विवाह विच्छेद हो जाता है । पहले अजय किसी और लड़की से विवाह करता है । बाद में शकुन भी डॉ. जोशी से विवाह कर लेती है । शकुन का डॉ. जोशी से विवाह एक स्वस्थ चिंतन का परिणाम नहीं है । वह केवल प्रतिक्रिया है । तुम शादी कर सकते हो तो मैं भी शादी कर सकती हूँ । केवल यह दिखा देने भर की इच्छा के वशीभूत शकुन दो बच्चों के बाप ऐसे डॉ. जोशी से विवाह कर लेती है। बंटी के जीवन की त्रासदी यहाँ से शुरू होती है । डॉ. जोशी के परिवार में बंटी 'एडजेस्ट' नहीं हो पाता । शकुन के मन में एक और पाप-दृष्टि अंकुरित होती है, वह अकेली उससे क्यों गुजरे ? अत: जो शकुन पहले बंटी को छोड़ने के

लिए राजी नहीं थी, वही शकुन अजय को लिखती है कि वह बंटी को आकर अपने साथ ले जाए। बंटी अपने पिता के घर में, नई सौतेली माँ के साथ भी 'एडजेस्ट' नहीं हो पाता है। लगातार-लगातार मानसिक यंत्रणाओं से गुजरने के कारण बंटी जिद्दी, तूफानी, विद्रोही तथा समस्यात्मक (problemetic child) बन जाता है। जो बंटी पढ़ने में तेज और जहीन था वह धीरे-धीरे 'डफर' होने लगता है। अजय भी उसे संभाल नहीं पाता। फलत: उसे होस्टेल में रखा जाता है। उपन्यास अनेक प्रश्नों को उकेरता है। जिस बंटी को माता-पिता का सहज प्रेम नहीं मिलता वह बंटी आगे चलकर क्या बनेगा ? क्या उसके भीतर का विद्रोही तत्व उसे असामाजिक गुण्डा, बदमाश या गैरजिम्मेदार हिप्पी या बिटल नहीं बना देगा। जो शकुन अजय के साथ नहीं रह पायी बंटी जैसे एक सुंदर, भोलेभाले, सुदर्शन बच्चे के रहते हुए भी, वह क्या आगे चलकर डॉ. जोशी के साथ रह पायेगी ? वितृष्णा और ईर्ष्या सभर उसका मन क्या डॉ. जोशी के बच्चों को वात्सल्य दे पाएगा ?

प्रस्तुत उपन्यास में अजय और शकुन के टकराहट के क्षण, अजय जब बंटी से मिलने के लिए आता है वे क्षण, सम्बन्ध विच्छेद के क्षण, शकुन को जब अजय की शादी के समाचार मिलते हैं वे क्षण तथा डॉ. जोशी के यहाँ बंटी की विवश अवस्था को महसूसने बाले क्षणों को मनवैज्ञानिक क्षण के अंतर्गत रख सकते हैं। मनोवैज्ञानिक क्षणों का यह निरूपण बंटी के संदर्भ में भी दृष्टिगत होते हैं। बंटी को शकुन के साथ सोने की आदत है। डॉ. जोशी के साथ विवाह होने पर बंटी को भी डॉ. जोशी के बच्चों के साथ अलग कमरे में सोना पड़ता है। एक दिन रात में बंटी किसी भयानक दु:स्वप्न से चौंक जाता है। शकुन को अपने पास न देखकर वह कमरे से बाहर निकल आता है और डॉ. जोशी के कमरे में चला जाता है। लगभग अर्द्धरात्रि का समय था अत: कमरा खुला था। वहाँ शकुन और डॉ. जोशी

करीब-करीब निर्वस्त्र अवस्था में थे । इस दृश्य का बड़ा बुरा प्रभाव बंटी के दिलो दिमाग पर पड़ता है। पढ़ाई में वह पिछड़ जाता है । अपनी कक्षा में प्राय: शांत रहनेवाला बंटी अब शरारतें करता है । कभी कभी भौंड़ी हरकतें भी करता है । इसका बड़ा प्रतीकात्मक चित्रण मन्नूजी ने किया है । यथा - ''ड्रोइंग के क्लास में जब टेबल पर बोतल रखी जाती है तब बंटी अपने विचारों में खो जाता है । उसके सामने अजीब-अजीब दृश्य आने लगते हैं । वह बोतल उलट जाती है और डॉ. जोशी के दो पैरों में लटक जाती है ।''[४४] बंटी घर में भी बात-बात में झगड़ा करता है, मारपीट करता है, गंदी हरकतें करता है, रात में पथारी में पेशाब करने लगता है । इसी प्रकार एक भोला-भाला बच्चा Problamatic child बन जाता है । शकुन और डॉ. जोशी को उस अवस्था में देखने के बाद जिन क्षणों में बंटी के सामने अजीब-अजीब दृश्य आने लगते हैं । उन क्षणों का बडा ही मनोवैज्ञानिक चित्रण लेखिका ने किया है।

बंटी की स्थितियों को लेकर उपन्यास के अंत में शकुन की जो स्वीकारोक्ति है, उसमें भी मनोवैज्ञानिक क्षणों का निरूपण हुआ है । यथा - ''सच, हम लोग शायद बंटी को मात्र साधन ही समझते रहे । अपने-अपने अहम, अपनी-अपनी महत्वकांक्षाओं और अपनी-अपनी कुंठाओं के संदर्भ में ही सोचते रहे । बंटी के संदर्भ में कभी सोचा ही नहीं ।''[४५.]

बंटी की आंतरिक स्थिति का प्रतीकात्मक वर्णन एक स्थान पर आया है । शकुन जब डॉ. जोशी के बंगले रहने चली जाती है तो अपने बगीचे से कुछ पौधों को उखाडकर डॉ. जोशी के बंगले में लगवा देती है । कुछ समय बाद वे पौधें मुझने लगते हैं । शकुन जब माली से इस संदर्भ में पूछती है तो वह बताता है कि ऐसा होना स्वाभाविक है । पौधों को नई मिट्टी में जड़

जमाने में कुछ तो वक्त लगेगा । तब शकुन को तुरंत ही बंटी का ख्याल आता है । वह सोचती है बंटी भी इन पौधों की तरह मुर्झा रहा है, ये पौधे तो शायद जड़ पकड भी ले, क्या बंटी इस नये वातावरण में अपनी जड़ें जमा सकेगा ? शकुन के चिंतन के यह क्षण भी मनोवैज्ञानिक क्षण की कोटि में आते हैं ।

३:२०:००

'कृष्णकली' शिवानी का उपन्यास है । मुनीर अपने समय की प्रसिद्ध नृत्यांगना और नेपाल के राना की रखैल थी । मुनीर की तीन बेटियाँ हैं - माणिक, हीरा और पन्ना । इन तीनों के पिता अलग-अलग थे । माणिक नेपाल के राना की पुत्री थी । हीरा लाटसाहब के हब्शी नौकर रौबी की पुत्री थी । अत: अश्वेत थी । किन्तु अपने शारीरिक डिलडौल के कारण वह अत्यन्त सुंदर दिखती थी । इसीलिए मुनीर उसे 'ब्लेक ब्युटी' कहती थी । पन्ना लाट साहब की ए.डी.सी. रोबर्टसन की पुत्री थी, जिसमें उसके अंग्रेज पिता की गौरता उसके सौंदर्य को चार चाँद लगाती थी । मुनीर और हीरा की एक कार अकस्मात में मृत्यु हो जाती है । उसके बाद मुनीर का व्यवसाय माणिक संभाल लेती है । माणिक और पन्ना दोनों नृत्यांगनाएँ हैं । इन दोनों के निवास स्थान का नाम 'पीली कोठी' है । 'पीली कोठी' में अनेक सुन्दरियाँ माणिक के संरक्षण में पल रही हैं । माणिक और पन्ना का नृत्य तो कुछ विशेष अतिथियों के लिए ही होता है । विद्युतरंजन मजूमदार ऐसे ही विशेष अतिथियों में आते हैं । बंगाल की राजनीति में मजूमदार का अपना एक विशिष्ट स्थान है । राजा-महाराजाओं के बाद वर्तमान समय में मंत्रीगण ही उनकी कोटि में आते हैं । पन्ना विद्युतरंजन मजूमदार को चाहने लगती है । उसी से पन्ना को जीवन की प्रौढ़ावस्था में गर्भ रहता है । पन्ना अपनी बड़ी

बहन माणिक का खूब आदर करती है, अत: संकोच के कारण इसी संदर्भ में न बताते हुए वह चुपचाप अलमौड़ा चली जाती है। अलमौडा में पन्ना का परिचय विदेशिनी डॉ. पैदरिक से होता है, जो वहाँ के कुष्ठ रोगियों के आश्रम में भी अपनी सेवाएँ देती थी। पन्ना की पुत्री जन्मते ही मर जाती है। उन्हीं दिनों में अलमौड़ा में कुष्ठाश्रम से एक लड़की का जन्म होता है वह कुष्ठ रोग से पीडित माता-पिता की संतान थी। अत: उसकी माँ पार्वती प्रसव के तुरंत बाद उसे मार डालना चाहती थी। किन्तु डॉ. पैदरिक उस नवजात बच्ची को किसी प्रकार बचा लेती है। और पन्ना को इस बात पर राजी कर देती है कि वह उस नवजात लड़की को अपनी बेटी के रूप में अंगीकृत कर लें। वह पन्ना को विश्वास दिलाती है कि इस लड़की के जन्म से सम्बन्धित इतिहास को वह हमेशा गोपनीय रखेगी।

पन्ना उस नवजात लड़की को लेकर 'पीलीकोठी' आती है। पीलीकोठी में उसका लालन पालन वाणी सेन की देखरेख में होता है। पन्ना से भी अधिक प्रेम उसे वाणीसेन से ही मिलता है। वाणी सेन गुरूदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर की एक रचना के आधार पर उसका 'कृष्णकली' नाम रखती है। यह नाम उसके किंचित श्याम रंग को लक्षित करके रखा गया था। 'कली' उसका ही संक्षिप्त रूप है।

पन्ना विद्युतरंजन मजूमदार के सम्मुख कली को उसकी बेटी सिद्ध करने का प्रयास करती है, किन्तु विद्युतरंजन इसे साफ नकार जाता है। पन्ना को इस बात से आघात पहुँचता है और विद्युतरंजन की ओर से उसका मोहभंग हो जाता है। माणिक कली को इसी व्यवसाय में लगाना चाहती थी, किन्तु पन्ना इस बात से सहमत नहीं होती। इस बात को लेकर दोनों बहनों में झगड़ा भी हो जाता है। पन्ना रोजी (डॉ. पैदरिक) की सहायता से पर्वतीय

प्रदेश के एक कॉन्वेण्ट के बोर्डिंग स्कूल में कली को दाखिल करवा देती है । कली एक उन्मुक्त स्वच्छंद प्रकृति की और चंचल लड़की है । कॉन्वेण्ट की मधर कली के संदर्भ में कहती है - ''लड़की की बनने-संवरने में जितनी रूचि है, उसकी आधी भी यदि पढ़ने में होती तो यह हमारे कॉन्वेण्ट का नाम उज्जवल करती । ऐसी प्रखर बुद्धि की छात्रा हमारे कॉन्वेण्ट में अर्से से नहीं आयी, पर इस नन्हें प्रखर मस्तिष्क की कुटिल चाल देखकर मैं सहसा विश्वास ही नहीं कर पाती कि वह भोली, वर्जिन, मेरी जैसे चेहरेवाली बच्ची ऐसा कर सकती है ।''[४६]

विद्युतरंजन मजूमदार के व्यवहार के कारण पन्ना पहले तो उसका तिरस्कार करती थी, किन्तु कुछ वर्षों बाद वह अपने पारिवारिक जीवन की झंझटों की कहानी सुनाता है, तब वह कुछ पिघलती है । उसके भीतर की कटुता दूर हो जाती है और तब भावना के ज्वार में मजूमदार को कली के जन्म की सच्ची बात वह बता देती है । कली उस समय अकस्मात वहाँ आ गयी थी । छीपकर वह दोनों की बात को सुन लेती है और तब उस के जन्म का रहस्य उसके सामने प्रकट हो जाता है ।

अपने जन्म की इस कुत्सित कहानी से कली खिन्न हो जाती है और उसके जीवन की दिशा ही बदल जाती है । 'प्रेत और छाया' के पारसनाथ की भांति कली भी पथभ्रष्ट हो जाती है । सब कुछ छोड़-छाड़कर वह अपनी एक सहेली की आण्टी - लॉरीन आण्टी के यहाँ चली जाती है । लौरीन आण्टी प्रत्यक्षत: तो पाल्ट्रीफ ार्म चलाती है किन्तु उनका वास्तविक व्यवसाय तो सोने की तस्करी का है । कुछ समय बाद इससे मुक्त होकर बड़े-बड़े औद्योगिक संस्थानों में वह मॉडलिंग का काम करती है । कली कुछ समय इलाहाबाद में विवियन की आण्टी के पास रहती है । विवियन की आण्टी

कली को बहुत प्यार करती है । तभी उसका परिचय इलहाबाद स्थित एक पहाड़ी परिवार से होता है । पहाड़ी परिवार की अम्मा भी कली को बहुत चाहती है । इस प्रकार हम देख सकते हैं कि कली को माँ का वात्सल्य केवल तीन स्त्रियों से मिलता है -- वाणीसेन, विवियन की आण्टी और पहाड़ी परिवार वाली अम्मा ।

कली जब पहाड़ी परिवार से जुड़ती है, तब उसका परिचय उस परिवार के प्रवीर नामक एक युवक से होता है । प्रवीर एक तेजस्वी प्रगल्भ तथा आई.सी.एस. केडर का उच्च पदाधिकारी है । कली जब लौरीन आण्टी के वहाँ काम करती थी, तब एक बार प्रवीर के हाथों से जैसे तैसे बच गई थी । अत: प्रवीर जब उसे देखता है तो पहचान लेता है और उसको लेकर उसके मन में एक पूर्वाग्रह उत्पन्न हो जाता है । कली प्रवीर को जी-जान से चाहती है । प्रवीर वह पहला युवक है जिस पर कली अपना हृदय न्यौछावर कर देती है । स्वतंत्र, स्वच्छन्द, चंचल और चुलबुली होने के बावजूद कली के जीवन में कोई दूसरा पुरुष कभी नहीं आया था । प्रवीर भी बाद में इस तथ्य से परिचित होता है किन्तु तब तक बहुत देर हो चुकी थी । वह पाण्डेय परिवार का दामाद बन चुका था । इस विवाह के कारण कली पुन: एक यायावरी यात्रा के लिए चल पड़ती है । नौकरी के सिलसिले में वह सिलौन भी जाती है जहाँ रास्ते में अचानक उसकी मुलाकात वाणी सेन से हो जाती है । किन्तु वह उन्हें भुलावे में डालकर बीच रास्ते में ही कहीं उतर जाती है । उपन्यास के अंत में हम कली को इलाहाबाद वाली विवियन की आण्टी के यहाँ पाते हैं । वह केन्सर से पीड़ित थी । पन्ना और प्रवीर भी वहाँ पहुँच जाते हैं । दूसरे दिन प्रवीर जाने वाला था । अत: नींद की गोलियाँ खाकर वह अपने भविष्यत् मृत्यु को कुछ समय पूर्व आमंत्रित कर लेती है क्योंकि प्रवीर के सान्निध्य में ही वह आखिरी साँस लेना चाहती थी ।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि प्रस्तुत उपन्यास में पन्ना तथा कृष्णकली के जीवन में ऐसी अनेक नाजुक स्थितियाँ आती हैं जिनकी गणना मनोवैज्ञानिक क्षणों के रूप में की जा सकती है । विद्युतरंजन जब कली को अपनी पुत्री मानने से इन्कार कर देता है तब पन्ना जिस मोहभंग की स्थिति से गुजरती हे वह ऐसी ही एक स्थिति है । ठीक उसी प्रकार की स्थिति कली की शिक्षा को लेकर पन्ना जब माणिक से अलग होती है तब भी आती है । पन्ना पुन: विद्युतरंजन को समर्पित होती है और भावावेश में कली के जीवन की रहस्यमयता को प्रकट करती है । उन क्षणों को भी हम मनोवैज्ञानिक क्षणों की कोटि में रख सकते हैं । कली के जीवन में तो ऐसे कई प्रसंग आते हैं । अपने जन्म के रहस्य को जानना, प्रवीर से प्रेम होना, प्रवीर के मन में उसके संदर्भ में जो पूर्वाग्रह है उनको लेकर दु:खी होना, प्रवीर के विवाह के समय की उसकी मन:स्थिति तथा बाद में केन्सरग्रस्त अवस्था में प्रवीर की स्मृतियों को लेकर जीना आदि ऐसे क्षण हैं जिनको हम मनोवैज्ञानिक क्षण कह सकते हैं ।

३:२१:००

निर्मल वर्मा द्वारा प्रणित 'वे दिन' उपन्यास युरोप की महायुद्धोतर (post world war) दिशाहारा पीढ़ी के संत्रास, तनाव और घुटन को चित्रित करनेवाला उपन्यास है । आधुनिक जीवन की मूल्यहीनता, अर्थहीनता और तज्जन्य भीतरी खालीपन को यह उपन्यास सशक्त ढंग से रूपायित करता है। प्रस्तुत उपन्यास के जाक, मारिया, रायना, फ्रांज, टी.टी. आदि पात्रों की दुर्भाग्यपूर्ण नियति यह है कि वे युद्ध की अभिशप्त छाया से जुड़े हुए हैं । युद्ध की इस काली छाया ने उनके जीवन की सरसता को छीन लिया है । युद्ध की दहशत और भय से ये सभी पात्र आक्रान्त हैं । युद्ध न केवल कुछ

लोगों को खत्म कर देता है, किन्तु अपने पीछे एक काली विशाल, गहरी विशादपूर्ण शांति को छोड़ जाता है । जिसे भोगने वाले व्यक्ति जीवित होते हुए भी संवेदना के स्तर पर मृतक समान होते हैं । महाभारत के युद्ध के बाद पांडवों को शांति कहाँ मिली थी । विशाद की गहरी छाया में वे डूब जाते हैं । प्रस्तुत उपन्यास के उक्त पात्रों में हम देख सकते हैं कि युद्धोत्तर विशादपूर्ण शांति के विषपान से इन सबकी संवेदना भौंथरी पड़ गई है । इस संदर्भ में रायना के कथन को देखा जा सकता है - ''लेकिन कुछ चीजें हैं जो लड़ाई के बाद मर जाती है - शांति के दिनों में....हम उनमें से एक थे।.....वे लोग घरेलू जिंदगी में खप नहीं पाते । ....मैं किसी काबिल नहीं रह गई हूँ.....नोट इवन फोर लव । पीस किल्ड इट....।''[४७]

प्रस्तुत उपन्यास के सभी पात्र संवेदना के क्षेत्र पर खंडित है । जाक और रायना तलाकयाफ्ता पति-पत्नी है । फ्रांज और मारिया पति-पत्नी है, किन्तु उनके संबंध विच्छेद होने के संकेत मिलते हैं । उपन्यास का नायक 'मैं' अपने घर परिवार और देश से विच्छिन्न एक त्रिशंकु की स्थिति में साँस लेने वाला व्यक्ति है । टी.टी. की स्थिति भी लगभग उसी प्रकार की है ।

रायना एक ऑस्ट्रियन युवती है । क्रिसमस की छुट्टियों में वह चेकोस्लोवाकिया की राजधानी प्राग में कुछ दिनों के लिए छुट्टियाँ मनाने आती है । उसके साथ उसका एक मात्र पुत्र मीता है । जाक और रायना तलाकयाफ्ता है । मीता होस्टेल में रहता है । छुट्टियों में ये लोग उसे बारी-बारी से बाँट लेते हैं । यह बाँटना संतान प्रेम के कारण न होकर उत्तरदायित्व के विभाजन के कारण है । उपन्यास का नायक 'मैं' एक भारतीय छात्र है, जो प्राय: छुट्टियों में विदेशी यात्रियों के लिए 'इण्टरप्रेटर' का काम करता है । रायना के साथ उसका परिचय इसी संदर्भ में होता है । ऑस्ट्रिया जाने से

पहले रायना एक रात 'मैं' के साथ होस्टेल में गुजारती है । यहाँ पश्चिमी या आधुनिक जीवन का एक नया आयाम हमारे सामने खुलता है । अब तक पुरुष स्त्री को भोगता था, यहाँ एक स्त्री पुरुष को भोगती है । रायना प्रेम को शरीर की एक आवश्यकता के रूप में ही लेती है । इस संदर्भ में वह नैतिकता-अनैतिकता के प्रश्नों को बीच में नहीं लाती । वह उसे शरीर की एक आवश्यकता समझती है । दूसरे शहरों में जब वह अकेली होती है, प्राय: किसी मन पसंद युवक को चुन लेती है और उसके साथ शरीर सुख का आनंद मानती है । सामने वाले व्यक्ति को यदि पछतावा न हो तो वह इसमें कोई बुराई नहीं देखती है । न इसे लेकर उसमें कोई अपराध बोध दिखता है । वह साफ कहती है - ''मैं सिर्फ चाहती हूँ कि दूसरों को बाद में पछतावा न हो ।...थेन इट इस मिज़री....।''[४८] उपन्यास का नायक 'मैं' एक त्रिशंकु की जिन्दगी व्यतीत कर रहा है । टी.टी. की स्थिति भी वही है । यहाँ प्राग में वे विदेशी समझे जाते हैं और अपने देश में उनको परदेशी करार दिया जाता है । उनके मनोमंथन की स्थिति का लेखक ने निम्नलिखित शब्दों में चित्रण किया है - ''हम ऐसे वर्षों में घर छोड़कर चले आये थे, जब बचपन का संबंध उससे छूट जाता है और बड़प्पन का नया रिश्ता जुड़ नहीं पाता । अब घर बहुत अवास्तविक-सा जान पडता था, जैसे वह किसी दूसरे की चीज हो, दूसरे की स्मृति । ....वह अब अर्थहीन था । और किंचित हास्यास्पद ।''[४९] विदेशी होने के कारण चेकोस्लोवेकिया में इन लोगों की गणना अजनबियों में होती थी और उनके अपने देश में तो ये अजनबी थे ही । जैसा कि ऊपर निर्दिष्ट किया गया है । अत: ये दो तरफा अजनबीपन उनके जीवन की त्रासद स्थितियों को उकेरता है । जहाँ-जहाँ इस दो तरफा अजनबीपन का चित्रण हुआ है जिसमें यह बताया गया है कि 'मैं' की बहन ने एक पत्र लिखा था, जिसको कई-कई दिनों तक 'मैं' पढ़ता तक नहीं है। इससे यह प्रमाणित होता है कि वह किस कदर निराशा, घुटन और उब के

बीच जी रहा है । ऐसा एक दूसरा प्रसंग टी.टी. के संदर्भ में उपलब्ध होता है । टी.टी. की माँ ने अपने देश में एक दूसरे पुरुष से शादी कर ली है । इस संदर्भ में टीटी अपने दोस्तों को एक पार्टी देता है । उसके अपने ही कथनानुसार वह इस आनंद के प्रसंग में अकेले पीना नहीं चाहता । इस प्रकार टी.टी. अपने भीतर की वेदना को 'आनन्द' का नाम देता है । वह उसे 'सेलिब्रेट करता है' । वस्तुत: माँ के इस व्यवहार के कारण वह पूरी तरह से टूट जाता है । उसके भीतर का अकेलापन मानो चित्कार कर उठता है। कई बार व्यक्ति अपने भीतर के दु:ख-दर्द को छिपाने के लिए 'ओवर रिएक्ट करता' है । अत्यधिक आनंद या खुशी का प्रदर्शन करता है । वह बाह्यत: हँसता है, खुशियाँ मनाता है पर उसका अंतर बुरी तरह से रोता है।

रायना प्राय: दूसरे शहरों में दूसरे मर्दों को तलाश लेती है । उसके लिए यह एक शारीरिक क्रिया मात्र है । उसमें भावनात्मक सत्ता का कोई दखल नहीं है, क्योंकि वह मानवोचित संवेदना को खो चुकी है । युद्ध की विभीषिका ने उसे अमानवीय बना दिया है । उसका अपना बेटा भी उसके लिए प्रेम का प्रतीक न होकर एक जिम्मेदारी का पुलिन्दा है । अत: दूसरे शहरों में जब-जब वह ऐसा करती है वे क्षण उसके लिए मनोमंथन के होते हैं ।

प्रस्तुत उपन्यास में 'मैं' को वह अपने प्रेमी के रूप में चुनती है । इस प्रक्रिया के बाद वह तो निसंग और निर्मम होकर चली जाती है । पर 'मैं' उस प्रकार की निसंगता या निरपेक्षता नहीं ला पाता । वह तो अनेक दिनों तक रायना की याद में खोया रहता है । उसके विरह में तड़पता रहता है । 'मैं' की तड़पन के इन क्षणों को भी हम मनोवैज्ञानिक क्षणों के अंतर्गत रख सकते हैं ।

३:२२:००

'सारा आकाश', 'उखड़े हुए लोग',' कुल्टा' तथा 'शह और मात' जैसी औपन्यासिक रचनाओं के लेखक राजेन्द्रयादव का 'अनदेखे अनजान पुल' उपन्यास विषयवस्तु के एक नये कोण को लेकर उपस्थित हुआ है । जहाँ तक हिन्दी उपन्यासों का सवाल है, उसमे निरूपित समस्या अलग और अनछुयी समस्या है । उपन्यास की नायिका निन्नी एक अत्यन्त ही सामान्य दिखने वाली काली-कलूटी और कुरूप लडकी है । कॉलेज में 'कल्लोपरी' के नाम से लोग उसे चिढ़ाते हैं । निन्नी के दूसरे भाई-बहन कुरुप नहीं है, परिणामस्वरूप बचपन से ही लघुताग्रंथि के बीज उसके मानस में पड़ जाते हैं । कुरूपता की यह कचोट शैशवास्था तथा किशोरावस्था में फिर भी थोड़ी कम सालती है । परन्तु जब वह युवानी की दहलीज पर पाँव रखती है तब यह कचोट सहस्त्र गुना बढ़ जाती है । आर्थिक दृष्टि से उसके पिता एक सामान्य हैसियत वाले व्यक्ति हैं । निन्नी जैसी लड़की को खपाने के लिए दहेज में तगड़ी रकम देनी पड़ सकती है । जिसका अभाव होने से निन्नी का विवाह भी नहीं हो सकता । कुरूपता की दुर्भाग्यपूर्ण नियति से जुड़ी हुई निन्नी न किसी की पत्नी ही बन सकती है न प्रेयसी ही ।

अपनी कुरुपता को दूर करने के लिए सौंदर्य-विषयक पत्र-पत्रिकाओं को पढ़कर उसमें दिए गए विज्ञापनों के अनुसार वह हर संभव कोशिश करती है । पर प्रत्येक बार वह नाकामियाब रहती है ।

निन्नी को पुरुष स्पर्श का अनुभव बैजल और सागर से होता है । एक से अनजाने में और दूसरे से जान बूझकर । निन्नी अपने एक रिश्तेदार के यहाँ शादी में गयी थी । बैजल भी उसी शादी में आया था । बैजल संध्या नामक एक लड़की को चाहता था । शादी के दिनों में निन्नी और संध्या में

बहनापा हो जाता है । एक बार संध्या की मौसी संध्या को म्यानी से पत्तल निकालने को कहती है । संध्या ने उस समय एक खूबसूरत और कीमती साड़ी पहन रखी थी । ऐसी अच्छी साड़ी खराब न हो इसलिए संध्या के स्थान पर निन्नी म्यानी से पत्तल निकालने जाती है । संध्या को खोजता हुआ बैजल वहाँ पहुँच जाता है और अंधेरे के कारण निन्नी को संध्या समझते हुए उसे अपने बाहुपाश में लेकर एक साथ अनेकानेक चुंबन दे डालता है। यह सब कुछ क्षणों में हो जाता है । निन्नी को यह मालूम है कि बैजल ने ऐसा संध्या के धोखे में ही किया है, परन्तु तब उसे यह अनुभव भी होता है कि कुरुपता के कारण जीवन के किस आनंद से वह वंचित रही है । बैजलवाले प्रसंग के बाद निन्नी की बेचैनी बढ़ जाती है । हीनताबोध के कारण वह मानसिक यंत्रणा से गुजरती है । ऐसे में उसकी मुलाकात सागर से होती है । सागर उसके पड़ोस में ही रहता था । वह चौपट खेलने के बहाने उसके पास आता है और मौका पाकर बहाने-बहाने से उसके विभिन्न अंगों को जब-तब छू लेता है । निन्नी भी उसका विरोध नहीं करती । उसे भी इस खेल में मजा आता है । सागर उसे सस्ती बाजारू किताबें लाकर देता है । उन किताबों को पढ़कर निन्नी की कामभावना और भी भड़क उठती है । स्त्री-पुरुषों के रति संबंधों की जानकारी भी निन्नी को सागर से ही मिलती है । सागर के इन क्रियाकलापों से निन्नी के मन में एक भ्रान्ति पैदा होती है कि सागर उसे चाहता है । उसके जीवन में आनंद, उमंग और आशा की हिलौरें उठने लगती हैं । उस भ्रान्ति के कारण निन्नी के कुछ दिन आनंद-मस्ती में गुजर जाते हैं परंतु सागर केवल मन-बहलाव के लिए निन्नी का इस्तेमाल कर रहा था । एक दिन प्रेमिका सहज भाव से उद्वेलित और उल्लसित होकर निन्नी सागर को क्रीम की शीशी लाने के लिए अनुरोध करती है तब सागर 'छछूंदर के सिर में चमेली का तेल'[५०] ऐसा कहकर निन्नी का क्रूर उपहास करता है । सागर के इस क्रूर मजाक से निन्नी का दिल टूट जाता है । वैजल और सागर

से निन्नी को जो पुरुष स्पर्श प्राप्त होते हैं उसके कारण उसके मन में अनेक कुत्सिक विकृतियाँ पैदा होती हैं और निन्नी पुरुष स्पर्शों को पाने के लिए नई-नई तरकीबें ढूंढती रहती है। वह जान-बूझकर भीड़-भड़क्के वाले स्थानों पर जाती है । अपने भाई के साथ वह दिल्ली इसलिए जाना चाहती है कि उसने अपनी सहेलियों से सुन रखा था कि दिल्ली की बसो में लोग खूब शैतानियाँ करते हैं ।

निन्नी अपने भाई के साथ दिल्ली नुमाईश देखने जाती है । एक दिन उसका भाई कुछ देर से घर लौटता है, तब निन्नी अपने भाई के मित्र दर्शन के साथ चल पड़ती है । दर्शन चित्रकार था । दर्शन के खूले व्यवहार से निन्नी के मन में फिर एक सपना तैरने लगता है, पर वह भी जल्दी टूट जाता है, जब उसे पता चलता है कि दर्शन किसी और को चाहता है और उसका रिश्ता भी तय हो गया है । निन्नी चारों तरफ से निराश होकर आत्महत्या के विचारों में खो जाती है । साधारण कपड़ों में कड़ाके की सर्दी में कॉलेज जाकर डबल न्यूमोनिया को आमंत्रित करना उसका एक ऐसा ही आत्मघाती प्रयास है । कुरूपता से उत्पन्न हीनताबोध निन्नी के जीवन को समाप्त ही कर देता परन्तु उसी समय दर्शन उसे पुन: मिलता है । दर्शन एक नये सौंदर्यबोध से उसे परिचित कराता है और इस प्रकार जीवन के प्रति उसमें आस्था जगाता है । वह निन्नी से कहता है कि यह आनुपातिक और आंगिक सुंदरता ही सब कुछ नहीं है, प्रत्युत आंतरिक सुंदरता, मन की सुंदरता या आत्मा की सुंदरता ही महत्वपूर्ण है । संसार में केवल रूप की ही पूजा नहीं होती वरन् गुणों का भी महत्व है । इस प्रकार दर्शन निन्नी के सोचने के ढंग को ही बदल देता है । वह निन्नी की आंतरिक शक्ति और प्रतिभा से परिचित था, केवल निन्नी को अपनी शक्ति का और मेधा-प्रतिभा का अंदाजा नहीं था । दर्शन निन्नी का उस आंतरिक निन्नी से परिचय करवा देता है । इस नये

सौंदर्यबोध से निन्नी आस्थावान हो उठती है और वह पूर्णतया अपने अध्ययन, अनुशीलन में डूब जाती है । फलस्वरूप वह आई.ए.एस. कर देती है और भारत सरकार में एक उच्च पद को प्राप्त कर लेती है । मनोविज्ञान की दृष्टि से निन्नी में जो लघुताग्रंथि (Inferiority complex) थी उसका शमन प्रभुत्वग्रंथि (superiority complex) के द्वारा हो सकता था और लेखक दर्शन के माध्यम से वही करता है । इस प्रकार कृष्णा सोबती द्वारा प्रणीत 'सूरज मुखी अंधेरे के' की रति की समस्या जिस प्रकार दिवाकर के द्वारा सुलझा दी जाती है, यहाँ निन्नी की मानसिक गुत्थी दर्शन के द्वारा सुलझती है ।

मनोवैज्ञानिक क्षण के निरूपण की दृष्टि से विचार किया जाए तो प्रस्तुत उपन्यास में निन्नी जहाँ किशोरावस्था को पार करके युवावस्था की ओर कदम बढ़ाती है, वहाँ से उसमें अपनी कुरूपता को बोध जगता है । जब उसके कॉलेज के सहाध्यायी उसकी कुरूपता को लेकर उसकी खिल्ली उड़ाते हैं तब निन्नी एक मानसिक उहापोह से गुजरती है । वह निराश होकर सोचती है कि यह दुनिया उसके लिए नहीं है । इस दुनिया में उसकी कोई उपयोगिता नहीं है । उसकी यह निराशा उसके ही शब्दों में इस प्रकार अंकित हुई है - ''न वह साँवरी थी, न मीरा, न शबरी, न अहल्या बस दु:खी, हताश, थकी-मांदी, टूटी-फूटी आत्मा थी जो शांति मांगती थी ।''[५१] बैजल से अनजाने में उसे पुरूष का प्रेम मिलता है परन्तु बैजल संध्या समझकर ही उसे चुंबन देता है । अत: उसके बाद निन्नी को अपनी कुरूपता को लेकर बेहद दु:ख होता है । और वह सोचती है कि काश ! वह भी संध्या की तरह सुंदर होती । जब सागर से उसका परिचय होता है तब कुछ समय के लिए उसके मन में फिर आशा की किरणें उत्पन्न होती हैं । परन्तु जिस अमानवीय ढंग से सागर उसकी खिल्ली उड़ाता है, उसके बाद तो वह पूर्णतया टूट ही जाती है । दर्शन को मिलने के बाद भी ऐसी ही स्थिति का निर्माण होता है ।

अत: भारत सरकार में उच्च पद को प्राप्त कर लेने से पहले की तमाम स्थितियाँ जिनमें निन्नी को अपमानित होना पड़ता है और जिल्लत से गुज़रना पड़ता है, उन सभी क्षणों की गणना मनोवैज्ञानिक क्षणों के अंतर्गत होती है ।

३:२३:००

ममता कालिया द्वारा प्रणीत 'बेघर' उपन्यास हमारे समाज में व्याप्त मध्यकालीन संकीर्णता और दकियानुसी सोच के गंभीर परिणामों को व्यंजित करनेवाला उपन्यास है । इस उपन्यास का नायक परमजीत एक अर्धशिक्षित और अधकचरी मानसिकता वाला सामान्य युवक है । पढ़ने में वह कभी तेज़ नहीं रहा । हमेशा 'पास क्लास' या 'प्रमोशन' से पास होता रहा था परन्तु दुकानदार का बेटा होने के कारण व्यवसायिक बुद्धि उसमें पुष्कल प्रमाण में थी । फलत: बम्बई की एक कम्पनी में एक चीफ एजण्ट हो जाता है । बम्बई की चकाचौंध भरी फैशनेबल जिन्दगी में परमजीत आधुनिकता और 'फोरवर्डनेस' का मुखौटा तो पहन लेता है, परन्तु उसकी संस्कारगत संकीर्णता और मानसिकता को वह नहीं बदल पाया । ऊपर-ऊपर से आधुनिक परन्तु भीतर से एक मध्यकालीन दकियानुसी विचारवाले युवक के रूप में उपन्यास में वह उभरकर आता है ।

चीफ एजण्ट हो जाने के पश्चात वह सोचता है कि उसका एक सुन्दर-सा घर हो, एक सुंदर-सी बीबी हो, एक-दो बच्चे हों तो फिर क्या कहना । अपने इन स्वप्नों की पूर्ति हेतु वह संजीवनी से विवाह करता है । संजीवनी सुंदर, सुशील एवं शिक्षित युवती है । विवाह के उपरान्त परमजीत की यह ओढ़ी हुई आरोपित आधुनिकता की पोल खुल जाती है । उसने बाजारू काम-शास्त्र की पुस्तकों में पढ़ रखा था कि कौमार्यावस्था में लड़की के एक झिल्ली होती है । प्रथम सहवास में वह झिल्ली टूटती है और उसे

खूब सारा रक्तस्त्राव होता है । परमजीत संजीवनी के संदर्भ में यही सब सोचता-विचारता था । परन्तु ऐसा कुछ नहीं होता । न उसे रक्तस्त्राव होता है, न वह ज्यादा चिखती-चिल्लाती और पुकारती है ।

वस्तुत: अक्षतयौना को लेकर यह पुरानी दकियानुसी और अवैज्ञानिक बाते हैं । प्राचीन सामन्तकालीन समाज में लड़कियों का विवाह बहुत ही छोटी उम्र में हो जाता था । तब कदाचित यह संभव था । परन्तु अब जब लड़कियों का विवाह पुख्त उम्र में होता है, वह कसरत या व्यायाम करती हैं, साईकल चलाती हैं या जोगिंग करती है । ऐसी स्थिति में यह संभव नहीं है । परन्तु पुराने विचारों वाले अधकचरे परमजीत जैसे युवक आज भी इस प्रकार की भ्रामक बातों में उलझ जाते हैं और पत्नी के चरित्र पर शंका करते हुए अपने दाम्पत्य जीवन को बरबाद कर लेते हैं ।

इसके संदर्भ में आधुनिक, वैज्ञानिक कामशास्त्रीय ग्रंथों में यथार्थ विवरण मिलता है-

"There are and have been in a course of time - many peculliar ideas attached to madainhead and their deep lowering, when deep lowering takes place (which is rarely difficult) there is usually a little bleeding because a slight brick occurs in the mucose membrane, in certain peoples the custom has existed of displaying the bridalsheet duly stained with blood after bridal night as proof that the bride has not sexual inter course before."[५२]

अत: परमजीत के मन में संजीवनी को लेकर शंका के बीज पड़ जाते है । उसके बाद संजीवनी के प्रति उसका व्यवहार बदल जाता है । इस

घटना के पश्चात संजीवनी को लेकर वह जो सोचता है, कई बार उसकी जासूसी करता है, कभी उसके लेट आने पर जो सोचता है, विचारता है उन तमाम क्षणों की परिगणना हम मनोवैज्ञानिक क्षण के अंतर्गत कर सकते हैं। संजीवनी को लेकर उसे तरह-तरह के स्वप्न आते हैं, उस समय की उसकी मन:स्थिति को भी हम मनोवैज्ञानिक क्षणों में परिगणित कर सकते हैं। खाली समय में संजीवनी के मनोकल्पित पूर्व संबंधो को लेकर वह जो सोचता-विचारता रहता है उनकी गणना भी मनोवैज्ञानिक क्षणों के अंतर्गत की जा सकती है। इस प्रकार ममता कालिया का यह उपन्यास मनोवैज्ञानिक दृष्टि एवं मनोवैज्ञानिक क्षणों के निरूपण के संदर्भ में विशेष उल्लेखनीय कहा जा सकता है।

३:२४:००

मेहरून्निसा परवेश द्वारा प्रणीत 'आँखों की दहलीज' मुस्लिम समाज के परिवेश को रूपायित करने वाला उपन्यास है। प्रस्तुत उपन्यास में लेखिका ने 'आँखों की दहलीज' अर्थात् औरत की लाज और हया के लाँघ जाने के दुष्परिणामों को रेखांकित किया है। उपन्यास में लेखिका ने उच्च मध्यवर्गीय मुस्लिम समाज के परिवेश को उजागर किया है। उपन्यास की नायिका तालिया एक ईमानदार, अवकाश प्राप्त डिप्टी कलेक्टर सिद्दीकी साहब की बेटी है। सिद्दीकी साहब में मुस्लिम समाज की संस्कारगत, रूढिग्रस्तता नहीं है। वे कुछ खुले दिमाग के रोशनख्याल अधिकारी हैं। उन्होंने अपनी बेटी तालिया को पूर्ण स्वतंत्रता दे रखी है। तालिया की माँ पुराने विचारों की है। अत: वैचारिक-भिन्नता एवं पारिवारिक सौमनस्य के अभाव से क्षुब्ध होकर तालिया बिना सोचे-समझे समीम नामक एक युवक से विवाह कर लेती है। यह प्रेम विवाह है। समीम एक विचारशील, उदार एवं उदात्त गुणों से सम्पन्न

अध्यापक है । तालिया को वह जी-जान से चाहता है । यहाँ तक कि डॉक्टर द्वारा यह घोषित कर देने पर कि तालिया कभी माँ नहीं बन सकती, उसके प्रेम में किसी प्रकार की कोई कमी नहीं आती । इस बात से तालिया बहुत दु:खी रहने लगती है तब उसे प्रसन्न रखने हेतु समीम उसे कुछ दिनों के लिए उसके मायके भेज देता है ।

मुस्लिम समाज में किसी स्त्री का बाँझ रहना कितना खतरनाक हो सकता है, उसे तो उस समाज की कोई भुक्तभोगी महिला ही बता सकती है । तालिया की माँ को जब इस बात का पता चलता है, तब वह बहुत दु:खी होती है और एक योजना बनाती है जिसके तहत तालिया जावेद नामक एक दूसरे युवक से शारीरिक सम्बन्ध जोड़ती है । तालिया के लिए यह एक अकस्मात है, परन्तु उसकी माँ के लिए तो यह एक पूर्व निर्धारित योजना का हिस्सा है । यद्यपि डॉक्टरी रिपोर्ट के अनुसार संतानोत्पत्ति की क्षमता का अभाव तालिया में बताया गया है । तथापि मुस्लिम समाज की स्थितियों से वाकेफ़ कोई भी व्यक्ति यह बता सकता है कि ऐसी स्थितियों में स्त्री को ही दोषी बताया जाता है । डॉक्टरी अभिप्राय के बहाने पुरुष की अक्षमता पर एक पर्दा डाल दिया जाता है । अत: पुराने विचारों वाली तालिया की माँ के लिए ऐसा सोचना बिल्कुल अस्वाभाविक नहीं है । तालिया का दूसरा प्रेमी जावेद एक 'स्नोब' किस्म का अवसरवादी, चालाक और स्वरूपवान युवक है । उसका गोरा रंग और युवा शरीर तालिया को आकर्षित कर देता है । समीम धीर-गंभीर प्रकृति का है । वह तालिया को बहुत चाहता है परन्तु वह उसे शब्दों में व्यक्त नहीं करता । दूसरी तरफ जावेद प्रगल्भ और वाचाल है । तालिया की माँ की योजना के अनुसार जब वह उसे डेम दिखाने ले जाता है, तब उसे पर्वतीय एकान्त वातावरण में मौका देखकर तालिया को वह अपने आलिंगन में कस लेता है । ''जावेद ने तालिया को इतने जोर से कस लिया

कि तालिया पलभर को उस गर्म आलिंगन में सब कुछ भूल गई।''[५३] इस घटना के बाद तालिया कुछ उद्विग्न-सी हो जाती है। उसमें अपराध बोध (guilt) उत्पन्न होता है। उस समय तालिया जो सोचती है और जावेद जिस प्रकार अपने वासनापूर्ण आचरण को न्यायिक बताने की चेष्टा करता है उन तमाम क्षणों को हम मनोवैज्ञानिक क्षणों के अंतर्गत रख सकते हैं। तालिया का विवेक और समीम के प्रति जो उसकी एकनिष्ठता है उसे दिखाने के लिए जावेद कहता है - ''आप बेकार इतना सोचती हैं, चलिए नास्ते पर....तालिया, हम खुद नहीं चलते खुदा हमें चलाता है। जिस दिन यह समझ जाओगी उसी दिन सब हल्का लगेगा।''[५४] जावेद की इन चिकनी-चुपड़ी बातों में तालिया आ जाती है और वह सोचने लगती है कि काश ! जावेद उसके जीवन में पहले आता। तालिया के आंतरिक मन में बदलाव को भाँपते हुए और उसे अपने अनुकूल पाते हुए जावेद उसे और अपनी लफ्फाजी में लपेटने लगता है। यथा - ''खुदा ने हम दोनों को एक ही मूड़ में बनाया होगा। पर तालिया वह गड़बड़ कैसे हो गई ? दोनों पुतले कैसे बदल गये ?''[५५]

इस प्रकार जावेद तालिया को अपने वाक्जाल और मोहपाश में फँसाता है। तालिया सचमुच उसे प्रेम करने लगती है और उसकी कई-कई रातें जावेद के कमरे में गुजरने लगती हैं। परन्तु अन्ततः जावेद की पत्नी को इस गोपनीय प्रेम का पता चल जाता है और वह प्रेम आगे फलफूल नहीं पाता। तालिया अपने पति समीम के पास लौट आती है। उसके बादका उसका अपराधबोध और भी गहगने लगता है। वह भीतर ही भीतर अपने मन को कोसती है क्योंकि समीम उसे कभी संदेह की दृष्टि से नहीं देखता। उसे वह बेतहाशा प्यार करता है। जब-जब समीम तालिया को प्रेम करता है तब तब तालिया एक गहरी उदासीनता में खो जाती है। उस समय उसके मन में जो विचार उठते हैं उनको हम मनोवैज्ञानिक क्षणों के अंतर्गत रख सकते

हैं । अन्तत: यह अपराध बोध इतना बढ़ जाता है कि तालिया आत्महत्या का प्रयास करती है । परन्तु समीम उसे बचा लेता है । इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास में जावेद के सहवास के बाद तालिया में जो अन्तर्द्वन्द्व चलता है उसे हम मनोवैज्ञानिक क्षणों के भीतर रख सकते हैं । अपने इस अपराध बोध से मुक्त होने के लिए ही वह अपनी एक सहेली जमिला को समीम से विवाह करने के लिए तैयार करती है । तालिया जानती है कि समीम इसके लिए तैयार नहीं होगा । अत: वह एक योजना बनाती हे कि जमिला उसके शयन गृह में उसके स्थान पर बिस्तर पर सो जाए । समीम तालिया समझकर उससे शारीरिक संबंध जोड़ेगा और एक बार संबंध के जुड़ जाने पर उसकी सज्जनता जमिला को अपनाने के लिए विवश हो जाएगी । तालिया उसके इस मकसद में सफल हो जाती है । इस प्रकार अपराधबोध से ग्रस्त तालिया उससे मुक्त होने के लिए जो छटपटाहट महसूस करती है, उस छटपटाहट वाली स्थिति को हम मनोवैज्ञानिक क्षणों के अंतर्गत रख सकते हैं ।

३:२५:००

'चित्तकोबरा' मृदुला गर्ग का एक बहुचर्चित उपन्यास है । प्रस्तुत उपन्यास में प्रेम-विवाह और सेक्स भावना को एक आधुनिक दृष्टिकोण से देखा गया है । डॉ. लक्ष्मीनारायणलाल का एक उपन्यास है - 'मन वृन्दावन'। उसमें लेखक एक स्थान पर लिखते हैं - ''इस दुनिया में सब कहीं न कहीं इसी तरह प्रेम करते हैं, एक दूसरे को दूसरा तीसरे को और तीसरा चौथे को । यही करुणा है, जो प्राप्त है उसे कोई नहीं प्यार करता ।''[५६]

उपन्यास में मृदुलाजी कदाचित 'दोनों ओर प्रेम पलता है' (मैथिलीशरण गुप्त) वाली थियरी को गलत साबित करने का प्रयत्न करती है । मृदुलाजी की अपनी धारणा है - ''कोई भी इन्सान एक ही समय में एक दूसरे को

प्यार नहीं करते....जब एक करता है तो दूसरा नहीं और जब दूसरा करता है.....''[५७]

मृदुलाजी के उपन्यासों में यह प्राय: दिखायी पड़ता है कि उनकी नायिकाएँ अप्राप्त के प्रति आकांक्षित रहती है । प्राप्त के प्रति उनमें एक निरर्थकता का बोध दृष्टिगोचर होता है । अप्राप्त के प्रति उनमें एक गहरा आकर्षण पाया जाता है । अत: निरर्थकता और भावात्मक सार्थकता के तनाव में उनकी नायिकाएँ प्राय: कसकमसाती रहती हैं । 'चित्तकोबरा' से पूर्व लिखे गये उनके उपन्यास 'उसके हिस्से की धूप' की नायिका जितेन से तलाक ले लेती है । क्योंकि वह व्यापारी है और उसका अधिकांश समय व्यावसायिक प्रवृत्तियों में प्रवृत्त होता है । नायिका मनीषा और नायक जितेन का प्रेमविवाह हुआ था । कोर्टशीप के दिनों में जब मनीषा प्रेमिका थी तब जितेन उसके लिए समय निकाल लेता था । विवाह से पूर्व मनीषा प्रेमिका थी । प्रेमिका होने के नाते वह सहज प्राप्त नहीं थी । परंतु विवाह के बाद वह प्राप्त की कोटि में आ जाती है और जितेन अपने व्यवसाय में डूब जाता है । मनीषा एक कॉलेज में लेक्चरर है । जितेन के साथ की जिन्दगी में उसे बोरियत का अनुभव होता है । अत: जितेन को तलाक देकर वह मधुकर से विवाह कर लेती है । मनीषा की दृष्टि में मधुकर एक सुरूचि सम्पन्न, कलामर्मज्ञ, मस्त और फक्कड़ प्रकृ ति का व्यक्ति है । परन्तु विवाह के बाद मनीषा अनुभव करती है कि जहाँ जितेन अपने व्यापार की दुनिया में डूबा रहता था वहाँ मधुकर सेमिनार, गोष्ठियाँ तथा कॉलेज की पढ़ाई-लिखाई में व्यस्त रहता है । जितेन व्यवसायिक-बुद्धि (commercial minded) व्यक्ति है तो मधुकर केरियरिस्ट है । इस प्रकार यहाँ मनीषा ठगी-सी रह जाती है और दूर के ढोल सुहावने वाली कहावत चरितार्थ होती हुई नज़र आती है। यह मानव मन की विचित्रता है कि जो उपलब्ध है उससे हमारा मन नहीं

भरता । अप्राप्त के प्रति एक आकर्षण सदैव बना रहता है । प्रेमी अवस्था के प्रति एक आकर्षण सदैव बना रहता है । प्रेमीअवस्था में जितेन अप्राप्त था । अत: उसके प्रति आकर्षण था । पति होने के उपरान्त वह प्राप्त की कोटि में आ गया । अत: वह रसीला, भावात्मक आकर्षण समाप्त हो गया। तब मधुकर अप्राप्त होने के कारण उसे अधिक आकर्षित करने लगा, परन्तु इस मृगतृष्णा का कोई अंत नहीं है ।

ऐसा लगता है कि मृदुलाजी अपने औपन्यासिक लेखन में अलग-अलग प्रयोग करती हैं । 'चित्तकोबरा' में उन्होंने प्रेम और विवाह की समस्या को एक दूसरे नवीन प्रयोग के साथ प्रस्तुत किया । उपन्यास की नायिका मनु महेश से विवाह करती है । मनीषा की भाँति वह महेश से विवाह विच्छेद नहीं करती, परन्तु एक ऐसी व्यवस्था कर लेती है कि वर्ष में कुछ दिन अपने प्रेमी रिचर्ड को मिलने की गुंजाइश बना लेती है । रिचर्ड के साथ बिताये गए दिनों की अनुभव-गमक में वर्ष के शेष दिन मानों गमकते-बमकते रहते हैं । वह ताजा-तरीज हो उठती है । महेश उसकी शारीरिक तपन को बुझाता है, वहाँ रिचर्ड उसके मन की वीणा के तारों की झंकृति प्रदान करता है। इस प्रकार 'चित्तकोबरा' की मनु जीवन के दो अलग अलग ध्रुवों से जुड़ी हुई है । एक तरफ महेश है दूसरी तरफ रिचर्ड । उसकी यौन क्षुधा (sex-urge) की संतृप्ति जहाँ महेश द्वारा होती है वहाँ उसकी आत्मिक और मानसिक क्षुधा रिचर्ड द्वारा परिपोषित होती है । सेक्स की जैसी उद्दाम और आवेशजन्य अनुभूति उसे महेश से होती है इतनी रिचर्ड से नहीं होती । फिर भी वह रिचर्ड को चाहती है । वर्ष के उन दिनों की प्रतीक्षा उसे सालभर रहती है ।

उपन्यास की नायिका मनु महेश से अधिक रिचर्ड को चाहती है । इसका कारण यह कतई-कतई नहीं है कि शारीरिक भोग से उसे कोई घृणा

है । या कि भावात्मक प्रेम या 'प्लेटोनिक लव' के प्रति उसे कोई विशेष आकर्षण है । बल्कि मनु तो एक ऐसी युवती है जिसमें एक वैचारिक खुलापन पाया जाता है और शरीर की आवश्यकताओं को भी वह पूर्णतया स्वीकार करती है । शरीर की उपेक्षा वह कहीं भी नहीं करती । बल्कि वह कहती है - "शरीर ही संगीत है, शरीर ही नृत्य, शरीर ही ईश्वर है, शरीर ही आराधना, शरीर ही चेतना है, शरीर ही विस्फोट । पर शरीर लालची नहीं । अपना प्राप्य पा लेने पर यह शांत हो जाता है ।"[५८]

मनु के उपर्युक्त एकालाप में उसके अंतरंग जीवन के मनोवैज्ञानिक क्षणों की अभिव्यक्ति हुई है । वर्ष के शेष दिनों में, जब वह रिचर्ड से दूर और महेश के पास होती है, तब वह रिचर्ड के साथ बिताये हुए क्षणों की जुगाली करती रहती है । इस जुगाली को भी हम मनोवैज्ञानिक क्षणों का दर्जा दे सकते हैं । ऐसे ही मनोवैज्ञानिक क्षणों के चिन्तन में एक स्थान पर मनु सोचती है कि अगर उसके विवाह रिचर्ड से हुआ होता तो कदाचित वह महेश से अधिक प्रेम करती । इस संदर्भ में प्रस्तुत उपन्यास की समीक्षा करते हुए डॉ. पारूकान्त देसाई ने दिखा है - "इस दृष्टि से प्रस्तुत उपन्यास 'एक पति के नोट्स' (महेन्द्र भल्ला) से बिल्कुल विरोधी बिन्दु पर ठहरता है। वहाँ पुरुष की भटकन को लिया है यहाँ स्त्री की भटकन को । वहाँ पुरुष की दृष्टि से स्त्री को देखा गया है यहाँ स्त्री की दृष्टि रो पुरुष को देखने का उपक्रम है । वहाँ स्त्री भोग्या थी, यहाँ पुरुष भोग्य है ।"[५९]

३:२६:००

हिन्दी की आधुनिक लेखिकाओं में निरूपमा सेवती का एक विशिष्ट स्थान है । "नारी शोषण, मध्यवर्गीय संघर्ष, निम्न वर्ग जीवन की नारकीयता, उच्च वर्ग की उपभोक्ता मनोवृत्ति और इन सबके बीच नारी चेतना, नारी

अस्मिता और उसके गौरव के लिए निरंतर संघर्षशीलता उनके लेखन के नुकीले आयामों को व्यंजित करते हैं । 'पतझड़ की आवाजें' उनके इस लेखनीय संघर्ष को खराद पर चढ़ानेवाला उपन्यास है ।"[६०]

प्रस्तुत उपन्यास की नायिका है अनुभा । सैंतालीस के लोमहर्षक दंगों की कहानियाँ उसने अपने परिवार वालों से सुनी थीं । तब वह कुछ महीनों की थी । पर परिवार वाले बांदमें भी उन विभिषिकाओं का जो वर्णन करते थे उनसे उसका आंतरिक मन पूर्णतया झुलस जाता है । उसने सून रखा था कि पाकिस्तान से हिन्दुस्तान भागते समय रास्ते में रेलगाड़ी के डिब्बे में कुछ मुसलमान गुंडे घुस आये थे और उन्होंने सबके सामने परिवार की छोटी बहु को नि:वस्त्र कर दिया था । उसके पति ने प्रतिरोध किया तो उसके पेट में चाकू भौंक दिया गया था । यद्यपि अनुभा ने यह नहीं देखा था । परन्तु इसके बारे में अनेक बार सुना था । अत: यह अमानुषी दृश्य उसके भीतर कहीं बैठ गया था । फलत: मणिमधुकर कृत 'सफेद मेमने' की बन्नो की भाँति अनुभा के मन में भी सेक्स के प्रति एक अनाकर्षण का भाव विकसित हो गया था। शैशव की स्मृतियों का यह आघात और उससे उत्पन्न 'ठंडा पन' कदाचित दूर हो जाता यदि रमनेश की प्रेमवंचना का वह शिकार न होती। वह रमनेश नामक युवक को चाहती है । रमनेश भी उसको चाहता था और शनै: शनै: उसके शुष्क अभावपूर्ण जीवन में माधुर्य रस समाविष्ट हो रहा था। रमनेश के साथ अनुभा की सगाई भी हो जाती है परन्तु बाद में वह सगाई टूट जाती है। आर्थिक अभावों के कारण अनुभा के परिवार को ऐसे स्थान पर रहना पड़ता था जिसको सभ्य समाज अच्छा नहीं समझता । जिस मकान में वे लोग रहते थे उसके ऊपरी तल्ले पर वेश्याओं का कोठा था । रमनेश अनुभा से कहता भी है कि इस बात को लेकर उसके मित्र उस पर हँसते हैं कि उसकी फियान्सी कैसी जगह पर

रहती है और अन्ततः इसी कारण अनुभा की सगाई टूट जाती है ।

अनुभा के परिवार की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है । अतः वे उसे कॉलेज में पढार्ने के पक्ष में नहीं थे । परिवार के विरोध के बावजूद अनुभा बी.ए. में दाखिला ले लेती है । साथ ही साथ वह टाइपिंग का कोर्स भी कर लेती है । अनुभा एक अत्यन्त ही भावुक और संवेदनशील लड़की है । अपने घर परिवारवालों की आर्थिक विवशताओं तथा अपने पिता की दर्दनीय स्थिति को वह अधिक समय बर्दाश्त नहीं कर सकती, फलतः अपनी आत्मा को अधिक कष्ट देते हुए कॉलेज की पढ़ाई को छोड़कर वह नौकरी करने लगती है । परन्तु अनुभा के चरित्र में दूर्दमनीय संघर्षशीलता का गुण हमें मिलता है । वह हिम्मत नहीं हारती । नौकरी के साथ-साथ पढ़ाई को भी जारी रखती है ।

नौकरी में कुछ समय भलीभाँति व्यंतीत हो जाता है । उसकी आफिस के बॉस धीरेन वर्मा के कोमल स्नेहपूर्ण व्यवहार से उसे खूब राहत मिलती है, परन्तु धीरेनबाबू नौकरी छोड़कर व्यवसाय में लग जाते हैं । धीरेनबाबू शांत, गंभीर और संतोषी प्रवृत्ति के व्यक्ति थे । परन्तु उनकी पत्नी में भौतिकता की चकाचौंध के प्रति आकर्षण का भाव मिलता है । अतः उसे थोड़े में संतोष नहीं होता और आखिक नौकरी तो नौकरी होती है, चाहे कोई ऊँचे पद पर हो तो भी उसका वेतन निश्चित होता है । व्यवसाय असीम संभावनाओं का क्षेत्र है । धीरेन बाबू शांत प्रकृति के थे, अतः नौकरी और उसकी आमदनी से वे पूर्णतया संतुष्ट थे किन्तु पत्नी की झीक-झीक के कारण उन्हें नौकरी छोड़नी पडती है ।

यहाँ से अनुभा की संघर्ष यात्रा के दिनों का प्रारंभ हो जाता है । धीरेनबाबू के स्थान पर उनका एक सहकार्यकर सी. के. प्रमोशन पाकर आता

है। अनुभा सी.के. के सामने अपने निवासस्थान की समस्याओं को रखती है। सी. के. उसे प्राइवेट सेक्रेटरी का पद ऑफर करता है । परन्तु उसके साथ कुछ शर्ते थीं, जिन्हें अनुभा की आत्मा स्वीकार नहलीं कर सकती । प्रमोशन के लिए अफसरों को खुश करने हेतु होटल या पिकनिक पर जाना उसके स्वाभिमान को स्वीकार्य नहीं था । वह केवल अपनी योग्यता के आधार पर आगे बढ़ना चाहती थी, परन्तु ऐसा माहौल हमारे देश के भ्रष्ट वातावरण में कदाचित संभव नहीं है । बावजूद शिक्षा और नारी चेतना के नारों के आज भी अनेक स्थानों पर नारी की योग्यता को बुद्धिप्रतिभा के निकष पर न कसते हुए उसके देहसौंदर्य और देहलालित्य के निकष पर कसा जाता है । यह एक नग्न वास्तविकता है ।

प्रस्तुत उपन्यास में दो तीन स्थान ऐसे हैं जहाँ मनोवैज्ञानिक क्षणों के निरूपण की पूर्ण रूपेण संभावना दृष्टिगत होती है । प्रथमत: अनुभा की स्मृतियों के वे क्षण है जिनमें वह उस विभीषिका के संदर्भ में सोचती है जब पाकिस्तान से भागते समय कुछ दरिन्दों ने उसके परिवार के साथ अमानवीय नारकीय लीला का नग्न प्रदर्शन किया था । द्वितीयत: रमनेश द्वारा जब अनुभा का रिश्ता ठुकराया जाता है, यह कहते हुए कि अनुभा का परिवार जहाँ रहता है वह स्थान समाज में बदनाम है । स्थान की बदनामी के कारण जब यह रिश्ता टूटता है तो अनुभा भीतर ही भीतर तिलमिलाकर रह जाती है । तृतीयत: उन क्षणों को लिया जा सकता है जब सी. के. के द्वारा उसे ऐसे ऑफर मिलते हैं जिन्हें कोई भी खुद्दार या स्वाभिमानी लड़की अंगीकृत नहीं कर सकती ।

३:२७:००

शशिप्रभा शास्त्री द्वारा प्रणीत 'सीढ़ियाँ' उपन्यास भी अपनी मनोवैज्ञानिक स्थितियों एवं मनोवैज्ञानिक क्षणों के निरूपण के संदर्भ में एक उल्लेखनीय

उपन्यास कहा जा सकता है । प्रस्तुत उपन्यास की नायिका मनीषी एक विधवा स्त्री है । युवावस्था में ही पति का देहान्त हो जाता है । उसके बाद वह दूसरा विवाह नहीं करती । पढ़-लिखकर डॉक्टर हो जाती है । डॉक्टर होने के कारण सुपर्णा नामक एक मरीज से उसका बहिनापा हो जाता है । इलाज करते-करते सुपर्णा उसकी एक अंतरंग सखी हो जाती है । यहाँ तक कि सुपर्णा की खातिर मनीषी अपना क्वार्टर छोड़कर उसके बंगले पर रहने लगती है । सुपर्णा की बीमारी असाध्य थी । अत: एक दिन वह दम तोड़ देती है, परन्तु मरते समय अपना बेटा सुकेत वह मनीषी को सौंप जाती है। मनीषी सुकेत को बेहद प्यार करती है । धीरे-धीरे सुकेत युवानी में कदम रखने लगता है और सुकेत और मनीषी बड़े ही रहस्यमय ढंग से भावात्मक स्तर पर एक दूसरे से इतने जुड़ते चले जाते हैं कि मनीषी को इसका पता भी नहीं चलता । फ्रायडीय मनोविज्ञान के अनुसार दो युवा स्त्री और पुरुष, मूलत: नर और मादा ही होते हैं, और यदि उनमें एकांत सहवास बढ़ता है तो उनमें प्रेम हुए बिना नहीं रह सकता । सुकेत मनीषी को मौसी-मौसी कहते हुए इतना चाहने लगता है कि मनीषी के बिना रहना उसे असंभव-सा प्रतीत होता है । परन्तु दोनों के विवाह में दो बातें विघ्न रूप हैं - मनीषी की उम्र सुकेत से दस-बारह साल ज्यादा है, दूसरे भारतीय परिवेश में सुकेत और मनीषी का जो मौसी और पालक पुत्र वाला रिश्ता है वह भी उसमें अडचनरूप है । मनीषी ने सुकेत को मौसी की तरह (भारतीय परिवेश में मौसी माँ के बराबर समझी जाती है, माँ जैसी बराबर मौसी) माँ की तरह पाला पोषा था । अत: उसे लोग और समाज का डर लगता है । पश्चिमी परिवेश होता तो ऐसे विवाह को सामान्य बात के रूप में लिया जाता । परंतु भारतीय परिवेश में यह थोड़ा अटपटा लगता है । मनीषा दकियानुस टाईप की स्त्री नहीं है परंतु शिक्षित और प्रतिष्ठित पद पर होने के कारण वह लोक और समाज से डरती है और सामाजिक परंपरा की बेड़ियों को तोड़ने का साहस वह नहीं जुटा

पाती । सुकेत तो मनीषी के सामने शादी का प्रस्ताव भी रखता है परंतु मनीषी लोकनिंदा के भय से इनकार कर देती है । उस समय का मनीषी का जो चिन्तन है उसे हम मनोवैज्ञानिक क्षणों के भीतर रख सकते हैं । वह सोचती हे - ''(लोग) तुम्हारा उठना बैठना मुश्किल कर देंगे - कोई कहेगा सुकेत की दौलत पर मर मीटी, न उम्र देखी न संबंध । पैसा आदमी को सचमुच अंधा बना देता है ।''[६१]

सुकेत मनीषी को पागलपन की सीमा तक प्यार करता है । वह मनीषी को अखबार की एक कटिंग दिखाता है जिसमें विदेश का कोई समाचार था । जिसके अनुसार एक पैंतालीस वर्षीय महिला ने तीस वर्ष के युवक के साथ विवाह किया था । इस पर मनीषी कहती है कि ''यह वियेना नहीं हिन्दुस्तान है । हमारे यहाँ इस प्रकार के विवाहों को कभी भी अच्छी नज़र से नहीं देखा जाता ।'' इस पर सुकेत कहता है - ''तुम मेरी सब कुछ हो, ममी, मित्र, प्रेयसी सब कुछ । धर्म शास्त्र और हिन्दुस्तान, मैं किसी की कोई चिन्ता नहीं करता । सम्बन्ध, समाज और परंपरा इन सब पर तुम मुझे क्यों बलि चढ़ाना चाहती हो ? मेरे लिए ये चीजें कोई महत्व नहीं रखती ।''[६२] सुकेत जब इस प्रकार की बातें करता है तो मनीषी के अन्तर्मन का 'इद' (Id) उसे सुकेत की बात को मान लेने की ओर प्रेरित करता है, परन्तु दूसरी तरफ उसका 'इगो' (Ego) सामाजिक लांछनाओं के नाम पर उसे रोकता है । इस प्रकार मनीषी के 'इद' और 'इगो' की टकराहट के क्षणों को हम मनोवैज्ञानिक क्षणों के अंतर्गत रख सकते हैं ।

मनीषी अंततः सुकेत की शादी शारदा नामक एक युवती से कर देती है । उसके बाद मनीषी की स्थिति बड़ी सोचनीय हो जाती है । शारदा-सुकेत और मनीषी की अंतरंगता को भला कैसे बरदाश्त करती ? सुकेत का मनीषी

के प्रति जो आकर्षण था उसे हम युवानी के ज्वार के रूप में देख सकते हैं। शारदा से विवाह के उपरान्त सुकेत का मनीषी के प्रति जो आकर्षण था, उसमें ओट आने लगती है। यहाँ तक कि शारदा विवाह के खर्च का हिसाब-किताब माँगती है, तब सुकेत मनीषी का पक्ष लेने के बदले शारदा की बात का ही समर्थन करता है। युवानी के दिनों में ही मनीषी के सामने विवाह के अच्छे-अच्छे प्रस्ताव आये थे। एक डॉक्टर कश्यप थे। जिन्होंने भी मनीषी के सामने विवाह का प्रस्ताव रखा था, परन्तु उस समय मनीषी पर सुकेत के पालनपोषण का उत्तरदायित्व था। उसके कारण वह डॉक्टर कश्यप के प्रस्ताव को ठुकरा देती है। अतः बाद में सुकेत और शारदा के कटु व्यवहार से मनीषी अकेलेपन की त्रासद् स्थितियों से गुजरती है और अपने विगत जीवन पर, सुकेत के लिए किये गये त्याग और बलिदान पर सोचती-विचारती रहती है। मनीषी के जीवन के इन त्रासद् क्षणों को भी हम मनोवैज्ञानिक क्षणों के अंतर्गत रख सकते हैं।

३:२८:००

शशिप्रभाजी का दूसरा उपन्यास 'नावें' भी मनोवैज्ञानिक उपन्यास है। प्रस्तुत उपन्यास की मालती अपने पारिवारिक उत्तरदायित्वों को निभाने के लिए नौकरी करती है। उसका बोस सोमजी एक शालीन एवम् सुसंस्कृत व्यक्ति है। सोमजी के सदव्यवहार से मालती कृतज्ञतावश उन्हें समर्पित हो जाती है। 'नगर पुत्र हँसता है' की परमेश्वरी या 'पतझड़ की आवाजें' के सी.के. जैसी लंपटता सोमजी में नहीं है। उनका साहित्यिक व्यक्तित्व एवं विद्वता मालती को आकृष्ट करते हैं और अपने शुष्क जीवन की एकरसता को तोड़ने के लिए वह सोमजी की बाँहों का सहारा तलाशती है। परंतु शालीन और सुसंस्कृत होते हुए स्त्री के नैतिक शोषण में सोमजी भी कहीं पीछे नहीं रहते हैं।

मालती के पिता एक निवृत्त सरकारी मुलाजिम है और घर का आर्थिक उत्तरदायित्व अब मालती पर है । मालती के घरवालों को उसकी कमाई से मतलब है । मालती कहाँ जाती है ? क्या करती है ? कई-कई दिनों तक क्यों गायब रहती है ? इन बातों से उनको कोई सरोकार नहीं है । सोमजी का सानिध्य मालती को भी अच्छा लगता है । उसके कारण उसकी एकरस और उबाउ जिन्दगी में थोड़ी रंगीनी और ताज़गी आ जाती है । फलत: मालती भी समाज की परवाह किए बिना अपने ढंग से जिए जाती है । परन्तु समस्या तब आती है जब मालती को सोमजी से गर्भ रह जाता है । यहाँ पर मालती मोहभंग की स्थितियों से गुजरती है । मालती सोचती थी कि सोमजी उसे अंगीकृत कर लेंगे । सोमजी उसे गर्भ गिराने के लिए कहते हैं, जिसके लिए मालती तैयार नहीं होती । मालती के मन में कोई अपराध बोध नहीं है । उसे अपने किए का कोई पश्चाताप भी नहीं है । यहाँ सोमजी का वह 'बगुला भगत' वाला व्यक्तित्व खुलकर सामने आता है । सोमजी मालती को अपने 'केप्ट' के रूप में तो रखना चाहते हैं, परन्तु उसे विवाहिता का दर्जा देने में अपनी असमर्थता प्रकट करते हैं ।

मालती को विश्वास था कि उसके घरवाले उसे अपना लेंगे, परंतु यहाँ वह दूसरे मोहभंग की स्थिति से गुजरती है । घरवालों को मालती की कमाई से तो मतलब था, परंतु अब वे मालती के कारण समाज में उन पर 'थू....थू...होगी' ऐसा सोचकर उसे घर से बाहर निकाल देते हैं । मालती की माँ तो उसका गला दबोचने को तैयार हो जाती है । और कहनी-अनकहनी सभी प्रकार की बातें सुना देती है । यहाँ पारिवारिक स्वार्थ की एक-एक परत खुल जाती है । दोनों तरफ़ से उदास होकर मालती बदायूं चली जाती है। वहाँ स्कूल की आचार्या रेवा निगम से मालती की पहचान होती है । रेवा निगम उसकी सहायक करती है और उसे स्कूल में नौकरी दिला देती है ।

मालती वहाँ नीलिमा को जन्म देती है । कुछ वर्ष शांति से व्यतीत हो जाते हैं, किन्तु समस्या तब आती है जब नीलिमा के स्कूल प्रवेश की बात उठती है । स्कूल प्रवेश के समय पिता के नाम की समस्या उपस्थित होती है तब रेवा निगम की ही सलाह से मालती विजयेश नामक एक उदारमतवाले व्यक्ति से विवाह कर लेती है । विजयेश एक समझदार, गंभीर, संयत और संयमी, अत्यन्त उदार प्रवृत्ति का व्यक्ति है । वह हर प्रकार से माँ-बेटी का ख्याल रखता है, परन्तु मालती ही अपनी निजी ग्रंथियों के कारण विजयेश को सही रूप में नहीं ले पाती ।

यहाँ से उपन्यास की कथा एक दूसरा मोड़ लेती है । सोमजी के विश्वासघात से उत्पन्न मोहभंग, माता पिता का क्रूर एवं अमानवीय व्यवहार नीलिमा को लेकर एक विशेष प्रकार की सतर्कता, सोमजी के साथ उड़ाई गई गुलछर्रें को लेकर एक प्रकार का अपराध-बोध, इन सब कारणों से मालती का मन मानों मर जाता है और उसमें सेक्स के प्रति एक प्रकार का ठंडापन आ जाता है । इस प्रकार एक पुरुष मालती को छलता है, उससे विश्वासघात करता है परन्तु उसकी सज़ा बेचारे विजयेश को भोगनी पड़ती है ।

उक्त कारणों से विजयेश-मालती का दाम्पत्य जीवन भी स्वस्थ नहीं रह पाता है । इस उपन्यास से एक बात तो निर्विवाद रूप से स्पष्ट हो जाती है कि कुंठित जीवन प्रणाली कभी स्वस्थ जीवन का निर्माण नहीं कर सकती। जो प्रतिक्रिया के रूप में किया जाता है, वह कभी स्वस्थ मानसिकता का परिचायक नहीं होता, मालती के जीवन का उत्तरार्द्ध, नितांत सहज और स्वाभाविक है । परंतु सोमजी द्वारा मिली प्रेमवंचना उसके विश्वास की बुनियाद को हिला देती है । फलत: विजयेश के साथ वह सहज नहीं रह पाती।

मानसिक ठंडेपन के कारण विजयेश विवाहित होते हुए भी हमेशा शारीरिक अतृप्ति का ही अनुभव करता हे । विवाह के प्रारंभिक दिनों में स्त्री का पुरुष के प्रति जो स्वाभाविक समर्पण भाव होता है, उसका उसे अनुभव ही नहीं होता । ऐसी तनावग्रस्त मानसिकता में विजयेश के मन में पश्चाताप का भाव अंकुरित होता है । वह सोचता है कि समाज-सुधार के जोश में एक अविवाहित माँ से विवाह करना ठीक नहीं था । दूसरे मालती के व्यवहार के कारण वह नीलिमा को भी भीतर ही भीतर घृणा करने लगता है । वह सोचता है कि कदाचित् इसके कारण ही मालती का दिमाग चल गया है । इन स्थितियों में एक बार वह घर छोड़ने तक का संकल्प कर देता है । परन्तु ऐन वक्त पर नीलिमा 'अप्पाजी' (विजयेश) की डायरी पढ़ लेती है और वह उन त्रासद परीणितियों को रोक लेती है । विजयेश के मन में नीलिमा के प्रति जो कठोरता का भाव था वह स्थायी नहीं था, वह केवल मालती के शुष्क व्यवहार के कारण था । अत: अपने स्नेह ओर अधिकारपूर्ण याचना से नीलिमा अप्पाजी को मनाने में सफल हो जाती है । इस प्रसंग के कारण विजयेश और नीलिमा में एक प्रकार की अण्डरस्टेडिंग भी विकसित होती है। विजयेश अपना सारा प्यार अपनी बेटी पर उंडेल देता है । फलत: वह एक मानसिक संतुष्टि का अनुभव कर लेता है ।

प्रस्तुत उपन्यास में अनेक स्थानों पर मनोवैज्ञानिक क्षणों की संभावना दृष्टिगोचर होती है । गर्भ ठहर जाने के बाद के सोमजी का व्यवहार, उसको लेकर मालती के अंतर्मन में चलने वाला उहापोह, सोमजी द्वारा ठुकराये जाने पर मालती के परिवार वालों का मालती के प्रति क्रूर व्यवहार और उससे उत्पन्न मोहभंग की स्थिति, पुत्री नीलिमा के नामांकन प्रसंग पर पिता के नाम को लेकर उत्पन्न समस्या न चाहते हुए भी मरे हुए मन से विजयेश के साथ एक समझौतावादी विवाह व्यवस्था, मालती के ठंडे व्यवहार के कारण विजयेश

के मन में चलनेवाला उहापोह ; इन सभी प्रसंगो में हमें मनोवैज्ञानिक क्षणों का निरूपण उपलब्ध होता है ।

३:२९:००

हिन्दी की नवोदित लेखिकाओं में राजी शेठ का एक विशिष्ट स्थान है। उनके उपन्यास 'तत्सम्' में हमें उच्च-मध्यमवर्गीय जीवन का परिवेश मिलता है । प्रस्तुत उपन्यास की नायिका वसुधा कॉलेज में व्याख्याता के पद पर काम कर रही है और आर्थिक प्रश्नों से निश्चिंत है । वसुधा के पति निखिल की एक कार दुर्घटना में मृत्यु हो जाती है । यदि ग्रामीण या निम्न मध्यम वर्गीय तबक्के पर दृष्टिपात करें तो विधवा जीवन अनेक प्रकार की करूणताओं और समस्याओं से ग्रस्त दृष्टिगोचर होगा, किन्तु उच्चवर्गीय समाज में जहाँ शिक्षित महिलाएँ आर्थिक दृष्टया आत्मनिर्भर हैं, वहाँ विधवाओं की स्थिति उतनी करूण या दयनीय नहीं है । कम से कम आर्थिक संबल या आश्रय के लिए उन्हें पुनर्विवाह के लिए विवश नहीं होना पड़ता । प्रस्तुत उपन्यास की वसुधा आर्थिक दृष्टि से सद्धर है ।

निखिल की मृत्यु से वसुधा की वसंतमय जिन्दगी में पानखर का प्रवेश होता है । भरेपूरे घर का अकेलापन उसे काटने दौड़ता है । उसकी सहजता समाप्त हो जाती है । निखिल की मृत्यु के पहले घर-परिवार वालों का व्यवहार उसके प्रति सहज था । निम्न या मध्यवर्गीय परिवारों में घर-परिवारवालों का व्यवहार विधवा के प्रति बदल जाता है । वह कुछ क्रूर या कठोर हो जाता है । यहाँ स्थिति दूसरे प्रकार की है । लोग जरूरत से ज्यादा उसका ध्यान रखते हैं । उसके प्रति अधिक अनुकंपा या सहानुभूति जताते हैं । वसुधा को यह सब खटकता (खलता) है । सब लोग उसका सविशेष ध्यान रखते हैं । यह विशेष ध्यान उसे हमेशा इस बात की स्मृति दिलाता है

कि वह अब लोगों के लिए सहानुभूति का पात्र बन गई है । वसुधा जब कॉलेज से घर आती है तब घर परिवार वालों का उसके साथ जो अतिरिक्त स्नेह या अतिरिक्त संभाल का व्यवहार है, असहज व्यवहार है, उससे वसुधा के अन्तर्मन को चोट पहुँचती है । इन क्षणों की गणना हम मनोवैज्ञानिक क्षणों के भीतर कर सकते हैं । वसुधा सोचती है कि अब उससे कोई सहज स्वाभाविक व्यवहार नहीं करेगा । दूसरों की दया और अनुकंपा ही अब उसके जीवन के आधार बन जाएंगे । लेट आने पर पहले वसुधा की माँ बरस पड़ती थी । परंतु अब वह चुप्पी साध लेती है । वसुधा चाहती है कि उसकी माँ उसके साथ पहले का-सा ही व्यवहार करें, परंतु यह नहीं हो पाता है । वसुधा की भाभी पहले उसके साथ खूब हँसी-मजाक और ठिठोलियाँ करती थी । परन्तु अब उसमें एक अतिरिक्त सजगता आ गई है । पहले वह बिना सोचे-समझे सहज रूप से कुछ भी कह देती थी । परन्तु अब वसुधा से बातचीत करने में बहुत सावधाती बरतती है । भतीजा चिंटू पहले वसुधा के पेट पर सो जाता था । अब वह ऐसा करता है तो उसे तुरन्त टोका जाता है - ''चल चिंटू बुआ को तंग न कर ।'' यह अतिरिक्त सजगता-असहजता से वसुधा दुःखी हो जाती है । वह पहले की हल्की-फुल्की हवा, वह धूप, वह खुलापन, वह खिलंडरापन उन सबको वह मानो पाना चाहती है, सूंघना चाहती है, पर वह हवा तो मानो निखिल की मृत्यु के साथ ही हवा हो गई है ।''[६३]

वसुधा के मन में पुनर्विवाह की कोई इच्छा नहीं है । पर घरवाले नये-नये ऑफर लेकर आते हैं । इस समय की वसुधा की जो स्थिति है उसमें उसे अनेक मनोवैज्ञानिक क्षणों से गुजरना पडता है । दूरभाष पर जब वह किसी को मना कर देती है, तब पूरे घर में एक हंगामा-सा खड़ा हो जाता है। आज से सौ-डेढ़ सौ वर्ष पूर्व उच्चवर्गीय अभिजात वर्ग में विधवा विवाह

का सख्त विरोध होता था, बल्कि एक प्रकार से विधवा-विवाह वर्जित थे। नवजगरण की प्रवृत्तियों के कारण उच्चवर्गीय समाज में अब विधवा विवाह को ससम्मान देखा जाता है। बल्कि घर-परिवार वाले ही उसके लिए अधिक उत्साह दिखाते हैं। नारी-चेतना की दृष्टि से यह एक शुभ लक्षण है। परंतु यदि कोई युवा-विधवा आत्मनिर्भर हो और यदि वह पुनर्विवाह के लिए इच्छुक न हो, तब भी उसे पुनर्विवाह के लिए दबाव डालना समस्या के एक दूसरे छोर को जन्म देता है। वसुधा के संदर्भ में यही समस्या है। उसके घर परिवार वाले जब उस पर बेजा दबाव डालते हैं और उनके इस दबाव से जिन यंत्रणा पूर्ण स्थितियों से वसुधा को गुजरना पडता है, उन क्षणों को हम मनोवैज्ञानिक क्षणों के रूप में अभिहित कर सकते हैं। चूंकि वसुधा सुशिक्षित है, एक सम्माननीय पद पर काम कर रही है, आत्मनिर्भर है, उसे सज-धज कर लोगों के सामने प्रस्तुत होकर एक लज्जा का, हीनता का अनुभव होता है। जब उसे इन स्थितियों से गुजरना पड़ता है उसका मन उसे बुरी तरह कचोटता है, न्होरता है और तब वह भीतर से जख़्मी और लहुलूहान हो जाती है। उसे यह बात सर्वाधिक रूप से कचोटती और कसकती है कि अब उसके पास चुनाव की श्रेष्ठता का अधिकार नहीं रहा। उसकी पीठ पीछे घरवाले यह भी कहते हैं कि अब वह पहलेवाली बात थोड़ी रही है। उसे तब घरवालों के रूख से बड़ी पीड़ा होती है। मानों वह कोई चीज है, जैसे सैकण्डहैण्ड चीज का विशेष महत्व नहीं होता, उसका कम मूल्य आँका जाता है। ठीक उसी प्रकार मानों वह भी अब लोगों के लिए सैकण्डहैण्ड चीज हो गई है। यथा - ''लोग आते हैं, जाते हैं, नापते हैं, तौलते हैं! कोसते हैं, लहु-लूहान करते हैं।''[६४]

वसुधा की इस कहानी के समानान्तर विवेक की कथा सामने आती है। विवेक पहले वसुधा को मिल चुका था और उसे पसन्द भी करता था,

परन्तु तब वह शिरीन को चाहता था । शिरीन को विवेक से गर्भ रह जाता है । तब विवेक उसके सामने विवाह का प्रस्ताव रखता है । इसे विवेक की सज्जनता ही समझना चाहिए, अन्यथा ऐसी स्थितियों में प्राय:पुरुष विवाह से कतराने लगते हैं । परंतु शिरीन भी सामान्य स्त्री जैसी नहीं है । वह स्वार्थी और खुदगर्ज नहीं है । वह विवेक से कहती है कि पहले वह अपनी पी-एच.डी. की पढ़ाई पूरी कर ले । शिरीन को इस वास्तविकता का ज्ञान था कि विवेक यदि अपनी पढ़ाई समाप्त कर लेता है तो डैडी के विरोध करने पर आर्थिक सामाजिक संघर्षों से जुझने में उन्हें आसानी रहेगी । परन्तु मनुष्य सोचता कुछ है और होता कुछ है । इसी उपक्रम में ऐबोर्शन करने के चक्कर में शिरीन की मृत्यु हो जाती है । तब विवेक प्रेमपूर्ण स्मृतियों की जिस यात्रा से गुजरता है, उन क्षणों की गणना भी मनोवैज्ञानिक क्षणों के अंतर्गत की जा सकती है ।

शिरीन की मृत्यु के लिए विवेक स्वयं को दोषी मानता है । इस बात को लेकर वह अपराधबोध (guilt) से भी पीड़ित रहता है । वसुधा की भाँति वह भी स्मृतिजीवी और संवेदनशील है । अत: अतीत जीवन की प्रेमपूर्ण यादें ही उसके जीवन का पार्थेय बन चुकी हैं । प्रेम की स्मृतियाँ वसुधा और विवेक उभय में तरंगायित होती रहती हैं, इस दृष्टि से वे एक रूप है, 'तत्सम्' है । समान धर्म होने के नाते कदाचित इन दो समदु:खी प्रेमियों का मिलन भी हो जाता, किन्तु इस बीच एक घटना घटित होती है। अपने घरवालों की आदतों से तंग आकर वसुधा दक्षिण भारत की यात्रा के लिए निकल पड़ती है । इस यात्रा के दौरान एक बार वह बुरी तरह से बीमार पड़ती है । उस समय आनंद नामक एक युवक उसकी खूब सेवा चाकरी करता है । आनंद वसुधा की जी-जान से सेवा करता है और उसे प्रसन्न रखने की हर मुमकिन कोशिश करता है । उसके ही शब्दों में - ''यह

अचानक की बीमारी, परदेश, ऊपर से अकेलापन और घर से दूरी । सोचता रहा क्या करूँ जो तुम्हें अच्छा लगे ।''[६५]

वसुधा एक विलक्षण, बुद्धि सम्पन्न महिला है । सेमिनार में उसके पेपर की तारीफ होती है । छात्रों में भी वह लोकप्रिय है । अत: इसे स्वाभाविक ही कहा जाएगा कि आनन्द उससे प्रभावित होता है । उसकी तीमारदारी के दरम्यान वह कुछ कुछ वसुधा के निकट भी आता है और फलत: उसे प्यार भी करने लगा है । वह वसुधा के सम्मुख विवाह का प्रस्ताव भी रखता है, किन्तु उसे सोचने के लिए समय भी देता है । दूसरी तरफ घर पहुँचने पर वसुधा को विवेक का पत्र मिलता है, जिसमें भी उसी प्रकार का प्रस्ताव रखा गया था । वसुधा आनन्द को विवेक के संदर्भ में सब कुछ साफ-साफ लिख देती है, जिसके प्रत्युत्तर में आनन्द वसुधा को लिखता है - ''इस कठिनाई में मैं तुम्हें गलत नहीं समझूँगा, आश्वासन देता हूँ । तुम अपने को किसी भी फै सले के लिए स्वतंत्र समझो । स्वतंत्रता किसी की भी हो, मेरे लिए सम्मान की चीज है, तुम्हारी तो और भी अधिक । उसके तहत किया गया कोई भी फैंसला मुझे मान्य होगा ।''[६६]

आनन्द के इस पत्र के बाद वसुधा सारी स्थितियों पर विचार करते हुए आनंद को ही जीवनसाथी के रूप में चुनती है । इस प्रकार यहाँ भी स्थिति 'तत्सम्' हो जाती है - एक बार विवेक ने मना किया था, शिरीन के प्रेम की खातिर अब वसुधा मना करती है, आनन्द का वरण करते हुए । वसुधा आनंद के साथ पुनर्विवाह कर लेती है । परन्तु इस निर्णय पर पहुँचने से पहले, अपने घरवालों को लेकर, उनके विविध प्रस्तावों को लेकर, विवेक और आनंद के पत्रों को लेकर वह पर्याप्त द्वन्द्वात्मक और उहापोह वाली मानसिक स्थिति से गुजरती है । वसुधा के इन क्षणों की गणना मनोवैज्ञानिक क्षणों के अंतर्गत की जा सकती है ।

३:३०:००

'बँटता हुआ आदमी' निरूपमा सेवती का एक ऐसा उपन्यास है जिसमें आज के खंडित एवं विभाजित व्यक्तित्ववाले मनुष्य की वेदना को उकेरा गया है । प्रस्तुत उपन्यास में मोहमयी मुंबई नगरी के फि ल्मी परिवेश को लिया गया है । फि ल्मी परिवेश को लेकर हिन्दी में कुछ एक उपन्यास आये हैं जिनमें 'फागुन के दिन चार' (उग्रजी), हिज हाईनेस (His Highness) (ऋषभचरण जैन), दिल एक सादा कागज (डॉ. राही मासूम रजा), क्लोजअप (सत्येन्द्र शरत) तथा कुरु कुरु स्वाहा (मनोहर श्याम जोशी) आदि प्रमुख हैं ।

भवानीप्रसाद मिश्र की एक कविता में आज के खंडित मनुष्य की ओर इशारा किया गया है । यथा -

''ठीक आदमकद कोई नहीं है,
न मैं, न वे, न तुम,
सब के पीछे लगी है,
आसक्ति की दूम ।''[६७]

'बँटता हुआ आदमी' में भी हमें कोई आदमकद पात्र नहीं मिलता है। सब बँटे हुए है, टूटे हुए हैं, खण्डित और विभाजित हैं - सुनंदा, शरद, धीरज आदि सभी पात्र जो फिल्मी जगत से जुडे हुए हैं ।

लक्ष्मीकांत वर्मा के उपन्यास 'टेराकोटा' में भी लेखक ने इसी खण्डित व्यक्तित्व की बात को उठाया है । उपन्यास का एक पात्र रोहित कहता है - ''आज भी दिल्ली में आदमी संत्रस्त है, टूटा हुआ है, क्षत-विक्षत है, पंगु है । फर्क केवल इतना है कि आज की पंगुता मानसिक है और आज से पहले हस्तिनापुर की पंगुता कायिक थी ।''[६८] इसी उपन्यास के 'पुरो-वचन'

में स्वयं वर्माजी लिखते है - "ये अधूरे पात्र ही कलयुग की पूंजी है। इन्हीं के आधार पर कलयुग में कथाएँ लिखी जाएँगी और इन्हें कोई कलयुग का ही लेखक लिखेगा।"[६९]

प्रस्तुत उपन्यास में भी निरूपमाजी ने आज के विखंडित मनुष्य की विसंगतियों को उद्‌घाटित किया है। प्रस्तुत उपन्यास की नायिका सुनंदा को शैशवकाल से ही ऐसी भयावह बीभत्सता का सामना करना पड़ता है कि अपने घर परिवार के लिए देह को माध्यम बनाये बिना उसके सामने कोई दूसरा रास्ता नहीं रह जाता। 'पतझड़ की आवाजें' की अनुभा जहाँ किसी प्रकार का कोई समझौता नहीं करती है वहाँ सुनंदा की नियति यह है कि उसे कदम-कदम पर ऐसे घिनौने समझौते करने पड़ते हैं। अनुभा पढ़ी लिखी थीं, सुनंदा उतनी पढ़ी लिखी नहीं है। उसके पास सुंदर देहयष्टि है जिसके द्वारा वह अपने परिवार को पालती-पोषती है। सुनंदा के परिवार में माँ, भाई, पिता और बहने हैं। इसमें पिता उसके अपने नहीं है, बाकि सभी उसके अपने हैं। सुनंदा की माँ ने अपने चार बच्चों के पालन-पोषण के लिए दूसरा विवाह किया, क्योंकि सुनंदा के पिता बहुत पहले ही दिवंगत हो चुके थे। सुनंदा की माँ इन निराधार बच्चों को बाप का आशरा मिले इस हेतु से विवाह करती है, परन्तु वह सहारा ही झूठा साबित होता है क्योंकि उसका वह दूसरा पति नंबरी शराबी, कबाबी और जुआरी निकलता है। इतना ही नहीं अपनी ऐय्याशी के लिए सुनंदा की तरुणाई को भी वह दाग लगा देता है। अपनी हवसों को पूरा करने के लिए सुनंदा को वह साढ़े बारह साल की कच्ची उम्र में शरीर के सौदे के व्यवसाय में धकेल देता है। इसका बड़ा ही हृदयद्रावक चित्रण लेखिका ने सुनंदा के ही शब्दों में किया है - "मुझे उसकी हरकतें बुरी लगी। पर सुनता कौन ? वह सारी गरीबी दूर कर सकता था। डेडी को आराम से शराब मिल जाती थी। कितना अच्छा इन्तजाम

था.....पता है, पता है मैं कितने बरस की थी....बारह साल सात महीने की....।"

इस प्रकार सुनंदा का सौतेला बाप जब उसकी ज़िन्दगी को बरबाद कर देता है, तब वह सोचती है कि उसकी जिन्दगी तो मिट्टी हो गई पर अब उसके रहते उसके भाई-बहनों को नरक से नहीं गुज़रना पडेगा । वह स्वयं मिट जाएगी पर उनकी जिन्दगियों को वह सँवार जाएगी । 'टेराकोटा' की मिति और 'पचपन खंभे लाल दीवारें' की सुषमा की भाँति वह भी अपनी परिवार-प्रतिश्रुतता के लिए अपनी भावनाओं को कुरबान कर देती है किन्तु सुनंदा की स्थिति तो मिति और सुषमा से भी गई-बीती है । वे दोनों सुशिक्षित थी। अत: उनको सम्मानित पदों पर नौकरी मिल जाती है । अत: उनको केवल अपना मन मारना पड़ता है, आत्मा नहीं । सुनंदा को तो आत्मा का सौदा करना पड़ता है । अत: पारिवारिक दरिद्रता को दूर करने के लिए बम्बई की फिल्मी दुनिया की ओर उसका ध्यान जाता है । सुंदर वह थी ही। पारिवेषिक परिस्थितियों ने उसे 'बोल्ड' भी बना दिया था । अत: फिल्म उद्योग में जाने-माने लोकप्रिय अभिनेताओं के साथ छ: सात फिल्मों में उसे काम मिल जाता है । इस प्रकार बारह साल की अवस्था से लेकर फिल्म दुनिया में आने तक की यात्रा में उसके जीवन में कई पुरुष आते हैं । फिल्म जगत में भी काम पाने के लिए शरीर के धरातल पर उसे कई सौदे करने पड़ते हैं । परन्तु मन का सौदा तो केवल शरदजी के साथ का ही था । सुनंदा शरदजी को तहे दिल से चाहती है । शरद एक शादीसुदा आदमी है । परन्तु फिल्मी दुनिया की आपाधापी में वह दिन-भर पीसता रहता था और शादी सुदा होते हुए भी स्त्री सुख से वंचित रहता था । ऐसे में सुनंदा उसके जीवन में आती है । सुनंदा फि ल्मी दुनिया में प्रवेश पाना चाहती थी । वह उसकी कुछ सहायता कर देता है । बदले में वह उससे शारीरिक संबंध जोड़ लेता

है। सुनंदा ने कई पुरुषों को अपना शरीर दिया था, किन्तु मन केवल शरदजी को देती है ।

प्रस्तुत उपन्यास में सुनंदा के संदर्भ में मनोवैज्ञानिक क्षणों की स्थिति का निरुपण कई प्रसंगों में हुआ है । कौमार्यावस्था में उसका सौतेला बाप उसकी जिन्दगी को दाग देता है, तब वह आत्मप्रताड़ना, भय, आतंक और संकोच की स्थितियों से गुजरती है । जिन्हें हम मनोवैज्ञानिक क्षण कह सकते हैं । उसके बाद घर-परिवार के अस्तित्व के लिए जब-तब उसे शरीर के सौदे करने पड़ते हैं, तब उसकी आत्मा उसे धिक्कारती है । आत्म-संलाप के उन क्षणों को भी मनोवैज्ञानिक क्षणों की कोटि में रख सकते हैं । फिल्मी दुनिया में आने पर उसे ऐसे बाज़ारू औरतनुमा हल्के स्तर के संबंधों से मुक्ति मिल जाती है, किन्तु यहाँ भी उसे फिल्मी दुनिया के कई-कई लोगों से शरीर के धरातल पर झुकना पड़ता है । पहले वह किसी से प्रेम नहीं करती थी, अब वह शरदजी को प्रेम करती है । अत: किसी दूसरे व्यक्ति से संबंध जोड़ते समय उसे अधिक गहरे मानसिक संताप से गुजरना पड़ता है । यह मानसिक संताप और यंत्रणा के क्षणों को भी मनोवैज्ञानिक क्षणों की कोटि में रख सकते हैं ।

प्रस्तुत उपन्यास में सुनंदा अपना शरीर बेचती है तो शरद अपनी प्रतिभा। एक शारीरिक व्यभिचार है तो दूसरा मानसिक । शरद अपना काम ईमानदारी और महेनत से करता है फिर भी उसे आगे की फिल्मों में काम नहीं मिलता । तब वह महसूस करता है कि पूरा समाज सड़-गल गया है और जीवन के 'एन्टी मूल्य' ही सही जीवन मूल्य हो गये हैं । कौए मोती का चारा चर रहे हैं और हंस घुन लगे दानों को भी तरस रहा है । अत: उसका मोहभंग होता है । उसकी वह खुशफहमी टूट जाती है कि व्यक्ति चाहे तो

अपनी जिन्दगी का साँचा खुद तैयार कर सकता है । अत: शरद फिल्मो को स्मगल करनेवाले एक गिरोह में शामिल हो जाता है । पहले तो उसकी आत्मा उसे कचोटती है । उसकी कलाप्रेमी आत्मा को यह स्वीकार नहीं है परन्तु भूख और बेहाली के मारे उसे यह सब करना पडता है । इस लाईन में शरद का एक सहयोगी है धीरज । शुरू शुरू में शरद जब मानसिक उहापोह से गुजरता है तो यह धीरज ही उसे समझाता है । वह कहता है - ''जनाब शरदजी ! मैंने इतनी भूख, इतनी बेकारी देखी है कि मुझ पर आपकी इस लेक्चरबाजी का कोई असर नहीं होने का । मैं अपने को जाया नहीं करना चाहता । एक मौका हाथ लग गया है - फिर कब मिलेगा जिन्दगी में इतना रूपया ।''[७१]

यहाँ पर अपनी आत्मा और जमीर के खिलाफ काम करते समय शरदजी को मानसिक उहापोह से जिन क्षणों से दो चार होना पड़ता है उन क्षणों की गणना मनोवैज्ञानिक क्षणों के अंतर्गत की जा सकती है ।

३:३१:००

डॉ. धर्मवीर भारती की पूर्व पत्नी श्रीमती कान्ता भारती द्वारा प्रणीत उपन्यास 'रेत की मछली' कई-कई दृष्टियों से बहुचर्चित उपन्यास रहा है । यह उपन्यास एक नये परिवेश एवं अनुभव जगत को पाठकों के सम्मुख उदघाटित करता है । विवाह के संदर्भ में भावावेग में लिए गये निर्णय कितने आत्मघातक प्रमाणित हो सकते हैं उसका उदाहरण प्रस्तुत उपन्यास है । वस्तुत: छद्म सत्य असत्य से भी अधिक भयंकर होता है । छद्मजीवी व्यक्ति अपने ऐन्द्रजालिक शब्द जाल या वाक्रजाल में फँसाकर लोगों को तड़पा-तड़पा कर मारते हैं ।

प्रस्तुत उपन्यास का खलनायक शोभन एक ऐसा ही छद्म साहित्यकार है । सच्चा साहित्यकार तो संवेदनशील, सहृदय, भावुक एवम् कोमल होता है, किन्तु शोभन तो लेखन और साहित्य के संदर्भ में बड़ी-बड़ी सैद्धांतिक बातें करता है, अपने लेखन में सदैव मानवीय मूल्यों का ढंढोरा पीटता है, किन्तु भीतर से वह कितना खोखला, कितना घिनौना, कितना अशब्दजीवी, कितना उधार-शब्दजीवी, कितना चैतन्यपंगु है उसका पता हमें उपन्यास की नायिका कुंतल से चलता है । अपने छद्मजीवी चरित्र के कारण शोभन कुंतल को अपनी लच्छेदार बातों में फँ साता है और बाद में मिनल नामक एक अन्य युवति से स्नेह संबंध बाँधता है । शोभन इतना विकृत मस्तिष्क व्यक्ति है कि कुंतल के सम्मुख ही वह मिनल से शारीरिक संबंध बाँधता है । अमानवीयता की पराकाष्ठा तो वहाँ आ जाती है जहाँ कुंतल प्रसव-पीड़ा में छटपटा रही थी वहाँ उसी अस्पताल में शोभन मिनल के साथ रंगरेलियाँ मनाने में लीन था ।

मिसेज़ कानन ने शोभन से कुंतल का परिचय करवाया था । वह परिचय प्रणय में और प्रणय परिणय में बदल गया । कुंतल को शोभन तब शांत, गंभीर और सुदर्शन लगता था । मानो गुनाहों की बस्ती में कोई देवता खड़ा हो । कुंतल शोभन पर अपनी जान छिड़कती थी और उससे विवाह सूत्र में बँधना चाहती थी, तब कुंतल के पिता ने चेतावनी देते हुए गंभीर स्वर में कहा था - ''तुम्हें इस समय कुछ नहीं सुझ रहा । वह कवि और लेखक है । आज तो तुम पर प्राण देता है कल उसकी संवेदना और किसी के साथ हो जाएगी ।''[७२] इस पर कुंतल अपने पिता से कहती है कि ''अगर वह दिन आ गया तो आपके घर लौट कर नहीं आऊँगी ।''[७३]

शुरू के कुछ वर्ष तो कुंतल के बड़े अच्छे गये, पर फिर शोभन के भीतर का पशु उसके सामने आता गया । कुंतल की अवदशा के पीछे उसकी

सहेली मिनल का हाथ है । मिनल कलकत्ते में अपने जीजा के साथ रहती थी । जीजा के साथ यौन संबंध स्थापित हो जाने पर अपनी बहन की लताड़ पर चेतना की मारी आत्महत्या करने जा रही थी, तभी शोभन और कुंतल ने उसे बचाया था । अतिरिक्त भावुकता में कुंतल मिनल को अपने यहाँ ले आई थी । मिनल ने शोभन को राखी बांधी थी, किन्तु भाई-बहन का यह प्रेम शीघ्र ही प्रेमी-प्रेमिका के प्रेम में बदल गया । जो बावरापन, पागलपन, तड़पन पहले कुंतल के लिए थी वह अब मिनल के लिए हो गई। एक बार कुंतल किसी विवाह में सम्मिलित होने के दूसरे शहर गई थी तब दो दिन में शोभन ने उसे दो पत्र लिख डाले थे । मिनल की बीमारी के समाचारों से शोभन उद्विग्न हो उठता है और उसे बचाने के लिए अपना सब कुछ दाव पर लगाने के लिए तैयार हो जाता है, पर आगे चलकर यह सब मिनल के साथ भी नहीं होगा, ऐसा विश्वासपूर्वक नहीं कहा जा सकता, क्योंकि कुंतल और मिनल के पहले भी शोभन के जीवन में मिसेज़ कानन, संतोला, बैनोजी आदि कई नारियाँ आ चुकी हैं और उन सबसे शोभन का बड़ा घनिष्ठ संबंध रह चुका है और आश्चर्य तो तब होता है जब शोभन अपनी इस बहु-स्त्रीगामिता के औचित्य को सिद्ध करने के लिए कुंतल को समझाता है - ''कुंतल तुम मुझे महान लेखक बनाना चाहती हो न । उसके लिए पत्नी के अतिरिक्त प्रेरणा भी तो लेनी होती है ।''[७४] सन् १९७४ में जैनेन्द्रकुमार का एक लेख धर्मयुग में प्रकाशित हुआ था । उसमें उन्होंने लिखा था - ''आदमी सिर्फ आदमी नहीं है, दिव्यत्व भी है ओर पशुत्व भी है। प्रेम जो है वह आदमी की दिव्यता से जुड़ा हुआ संबंध होता है और प्रेयसी दिव्यता का प्रतिरूप होती है । पत्नी सामाजिकता है, प्रेयसी दिव्यता है । ईश्वरतत्व के दर्शन प्रेयसी में ही प्राप्त होते हैं ।''[७५] जैनेन्द्रजी की इस प्रेयसीवाद का भोंडा अनुकरण यहाँ दृष्टिगत होता है । जैनेन्द्रजी तो प्रेयसी को मन और आत्मा मानते हैं । प्रेयसी को भी यदि शरीर के धरातल पर ही पाना हो तो

पत्नी और प्रेयसी में कोई अंतर नहीं रह जाता है । जैनेन्द्रजी प्रेयसी को पुरुष की प्रेरक शक्ति मानते हैं । पर वहाँ कामुकता को कोई स्थान नहीं है परन्तु शोभन तो भयंकर रूप से कामुक व्यक्ति है, बल्कि उसको सेक्समेनियाक भी कह सकते हैं । बेहोश होती हुई पत्नी को भी वह निर्वस्त्र करके देखता है । एक बार कुंतल के सामने ही मिनल को निर्वस्त्र करके आलिंगन देता है । उसकी काम विकृति की इंतिहां तो वहाँ आती है, जब वह कुंतल की गोद में मिनल का सिर रखकर उसके साथ सहवास करता है । प्रेरणा हेतु यह सब करना पडता है (?) पति को यदि महान लेखक बनाना हो तो पत्नी को इतनी कुरबानी तो देनी चाहिए न ? कुंतल की इस छूट का यह परिणाम आता है कि शोभन बिना विवाह किए ही दूसरे शहर में मिनल के साथ रहने लगता है । कुंतल जब उसके पास अपना अधिकार माँगने जाती है तब वह लात, घुसों और चप्पलों से बात करता है । जानवर की तरह मार-मार कर शोभन कुंतल से गलत बातें लिखवा लेता है और संबंध विच्छेद की याचिका भी दायर कर देता है । भरण-पोषण के झमेलों से बचने के लिए वह कुंतल का चरित्र-हनन भी करता है । तलाक मिल जाने पर मिनल से विवाह कर लेता है ।

शुरू के कुछ वर्ष कुंतल और शोभन में प्रेम के ज्वार के वर्ष थे । उसी प्रेम के फल के रूप में बिटिया तोरण का जन्म होता है जिसे दोनों प्यार में तोरु कहते हैं । तलाक के बाद कुंतल घर और शोभन को छोड़कर तोरण के साथ चल पड़ती है । दर-ब-दर की ठोकरें खाते हुए डेढ़ वर्ष बाद अपनी छाती पर पत्थर रखकर वह बेटी तोरण को शोभन के हवाले कर देती है । डॉ. राजरानी शर्मा के अनुसार कुंतल के इस कार्य से उसके साहस का परिचय मिलता है, क्योंकि प्राय: उसी बिन्दु पर आकर भारतीय स्त्री जो एक माँ भी है कमजोर पड़ जाती है और स्त्री की इस कमजोरी का फायदा पुरुष

वर्ग उठाता रहा है ।[७६]

प्रस्तुत उपन्यास में शोभन का परिचय जब मिनल से होता है और जब वह परिचय प्रणय में परिवर्तित होने लगता है, उस समय के कुंतल के अंतर्जगत के जो क्षण हैं, वे मनोवैज्ञानिक क्षण हैं । प्रसव के लिए अस्पताल में जाते समय कुंतल मिनल और शोभन के संदर्भ में जो गहरे विचारों में खो जाती है, उन क्षणों की गणना भी मनोवैज्ञानिक क्षणों के अंतर्गत की जा सकती है । शोभन जब मिनल के साथ खुल्लमखुल्ला रहने लगता है उस समय के कुंतल की मनोव्यथा के क्षण भी मनोवैज्ञानिक क्षण हैं । शोभन द्वारा प्रताड़ित और वंचित होने पर तथा उसके द्वारा जबरदस्ती विवाह-विच्छेद के पेपर्स पर हस्ताक्षर करा लेने पर कुंतल जो ठगी-सी, बेबस और लाचार रह जाती है वे क्षण भी इसी प्रकार के हैं । अंतत: जब कुंतल तोरण को सौंप देने का निर्णय करती है, उसके पहले जिस प्रकार के मनोमंथन और मानसिक उहापोह से, वह गुजरती है उन क्षणों की परिगणना भी मनोवैज्ञानिक क्षणों के रूप में की जा सकती है ।

३:३२:००

दीप्ति खण्डेलवाल द्वारा प्रणीत 'कोहरे' उपन्यास महानगरीय जीवन की छद्म-आधुनिकता को रूपायित करनेवाला उपन्यास है । प्रस्तुत उपन्यास का सुनील स्वयं को आधुनिक विचारों वाला समझता है किन्तु उसकी यह आधुनिकता अधकचरी और अपरिपक्व है । वह स्वयं यौन-उन्मुक्तता को भोगता है । विवाह से पूर्व और विवाह के बाद उसके जीवन में कई लड़कियाँ आती हैं । किसी एक से विवाह करके अन्य लडकियों से 'फ्लर्ट' करना वह अपना जन्मसिद्ध खानदानी हक्क समझता है । अत: कहा जा सकता है कि उसकी इस मानसिकता सामन्तकालीन मध्ययुगीन मानसिकता से अलग नहीं है ।

विवाह के पूर्व दर्जनो लड़कियाँ उसके जीवन में आ चुकी थीं, किन्तु विवाह के लिए वह स्मिता उर्फ सिमी को पसंद करता है । विवाह के कुछ ही महिनों में वह सिमी से उब जाता है और उसकी उपस्थिति में ही दूसरी लड़कियों को लाता है । सिमी जब उसका विरोध करती है तब निर्लज्जता पूर्वक वह कहता है - 'आई मस्ट चेन्ज द ब्राण्ड टू ।'[७७]

सुनील स्वयं तो यौन स्वतंत्रता का इच्छुक है और उसका व्यवहार भी उसके अनुरूप है किन्तु सिमी के मामले में उसके विचार पुराने और दकियानुसी है । वह आधुनिक होने का दंभ करता है, पर आधुनिक है नहीं । स्वयं अनेक लड़कियों से यौन सम्बन्ध रखता है किन्तु सिमी को किसी दूसरे के साथ नाचते हुए भी नहीं देख सकता । सिमी का रेडियो स्टेशन जाना भी उसे अच्छा नहीं लगता । एक बार सिमी जब अपनी कविता उसे सुनाती है, तब वह कहता है - ''लेकिन देखिए, मेरी कबूतरीजी आप कविता लिखेंगी तो सिर्फ मेरे लिए, छपने छपाने के लिए नहीं । कहिए मंजूर ?''[७८] इस पर सिमी रोते हुए जब सुनील से पूछती है - ''तुम तो मेरी इंडीविजुएलिटी को कायम रखना चाहते थे । तुम्हीं ने तो कहा था कि तुम मेरे अस्तित्व को जीने दोगे । वह सब क्या था ? ऐसे तो मैं घूटकर मर जाऊँगी ।''[७९] तब सुनील उसी को उड़ाते हुए कहता है - ''कहा था लेकिन तुम मेरे ढंग से अपनी इंडिवीज्युएलिटी को बनाये रख सकती हो । अपने ढंग से नहीं।''[८०]

सीमी से जब यह बरदाश्त नहीं होता तो वह अपने मायके चली जाती है । उसका मायका भी उसी शहर में है । सीमी के चले जाने से सुनील की यौन उन्मुक्तता और बढ़ जाती है । वह खुले आम लड़कियों को अपने बेडरूम में ले आता है । एक दिन सिमी शोपिंग के लिए निकलती है । अचानक उसके मन में विचार आता है और वह अपने घर चल पड़ती है।

उस समय सुनील इरा घोष नामक एक युवति से रंगरेलियाँ मना रहा था । सिमी आग बबूला हो जाती है और कानूनी तौर पर उसकी रिपोर्ट करने की धमकी देती है, तब सुनील बहुत ही ठंडेपन से जवाब देता है कि वह डायवोर्स के लिए अदालत में सुट फाईल कर चुका है । सुनील की बात से सिमी का दिल बैठ जाता है । सिमी को यह मालूम है कि अदालत में भरण-पोषण का खर्च न देना पड़े इसलिए सुनील किसी भी हद तक गिर सकता है । उसके चरित्र को लांछित करने में वह कोई कसर उठा के नहीं रखेगा । इन सब बातों को सोचकर वह निराश और दु:खी हो जाती है । सिमी इस प्रकार की नरकयात्रा से दुबारा गुजर रही थी, क्योंकि उसने अपनी माँ को इस प्रकार की नरक यात्रा से गुजरते हुए देखा था । सिमी के माता-पिता का दाम्पत्य जीवन भी स्वस्थ और संतोषजनक नहीं था । सिमी की माँ अनपढ़ थी । उसके पिता जयप्रकाश सिंहा विवाह तो कर लेते हैं किन्तु दूसरी स्त्रियों से सम्बन्ध रखते हैं । सिमी की माँ मूक पशु की भाँति इस पीड़ा को झेलती थी ।

सुनील की यौन उन्मुक्तता के कारण सिमी जिस प्रकार के मानसिक उहापोह से गुजरती है उन क्षणों को मनोवैज्ञानिक क्षण की कोटि में रख सकते हैं । ऐसे ही एक स्थान पर वह कहती है - ‘‘मैं कामायनी की श्रद्धा नहीं, इडा हूँ, भावना नहीं प्रज्ञा हूँ । मात्र स्पंदनमय नहीं तर्कमय भी - मात्र समर्पिता नहीं अधिकारमय भी ।....मैं हृदय के साथ बुद्धि भी रखती हूँ । यदि सर्वस्व दूँगी तो सर्वस्व चाहूँगी भी । अधिकार दूँगी तो लूँगी भी । चेतना के, जीवन के स्वप्न और यथार्थ के सारे संदर्भ ही नहीं अर्थ भी बदल चुके हैं ।’’[८१]

अत: सिमी जब सर उठाती है और अपने पर हो रहे मानसिक अत्याचार का विरोध करती है तब सुनील बिल्कुल अंतिम छोर की बात

७२. रेत की मछली : कान्ता भारती : पृष्ठ ४९

७३. वही : पृष्ठ : ४९

७४. वही : पृष्ठ : ५८

७५. लेख : द्वन्द्व ही रचनात्मकता को आधार देता है : जैनेन्द्र : धर्मयुग : सितम्बर १९७४ : पृष्ठ २८

७६. दृष्टव्य : हिन्दी उपन्यास में रूढिमुक्त नारी : डॉ. राजरानी शर्मा : पृष्ठ २३५

७७. कोहरे : दीप्ति खण्डेलवाल : पृष्ठ २८

७८. वही : पृष्ठ : २५

७९. वही : पृष्ठ : ९५

८०. वही : पृष्ठ : ९५

८१. वही : पृष्ठ : ५५

८२. वही : पृष्ठ : ३५